इक़बाल और राष्ट्रीय एकता

सैयद मुज़फ़्फ़र हुसैन बर्नी

राज्यपाल, हरियाणा

H
819.16
Iq 1 B

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

इक़बाल और राष्ट्रीय एकता

सैयद मुज़फ़्फ़र हुसैन बर्नी

राज्यपाल, हरियाणा

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

CATALOGUED

© प्रकाशक

प्रकाशक : हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

संस्करण : प्रथम–1985

प्रतियां : 1200

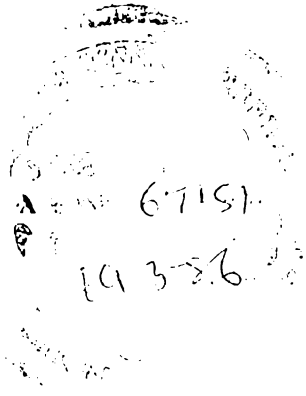

मूल्य रुपये

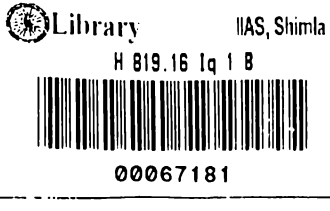

मुद्रक : नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, हरियाणा, चण्डीगढ़।

समर्पण

स्वर्गीय प्रिय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की पुण्य स्मृति
में समर्पित जिन्होंने राष्ट्रीय एकता एवं देश की अखण्डता
के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर दिये :

आसमां तेरी लहद पर शबनम अफ़शानी करे,
सब्जए नौरस्ता इस घर की निगहबानी करे ।*

(आकाश निरन्तर तुम्हारी क़ब्र पर ओस कणों की वर्षा करे और
नवोदित हरी घास सदैव इसकी निगरानी करती रहे ।)

*(इक़बाल–वालिदा मरहूमा की याद में)

प्राक्कथन

मैंने 'इक़बाल और राष्ट्रीय एकता' विषय पर भोपाल विश्व-विद्यालय के तत्त्वावधान में 14 जनवरी, 1984 को अपना मूल भाषण दिया था। इक़बाल के जीवन में भोपाल का विशिष्ट स्थान रहा है। इस शहर से उनके बहुत निकट के तथा सुखद और मधुर सम्बन्ध रहे हैं। सहबा लखनवी के परिश्रमपूर्ण शोध ग्रन्थ 'इक़बाल और भोपाल' के अनुसार भोपाल से इक़बाल का पहला और एक प्रकार से परोक्ष तथा नाममात्र का परिचय एक कवि सम्मेलन के माध्यम से हुआ, जिसका आयोजन 18 अगस्त, 1910 को किया गया था। कवि सम्मेलन के पश्चात् उपस्थित कवियों की और इस अवसर पर बाहर से प्राप्त कुछ चुनी हुई रचनाएँ सरूर क़ादरी द्वारा संकलित और सम्पादित कर के 56 पृष्ठों की एक पुस्तिका 'आईन-ए-मुशायरा' में प्रकाशित की गयीं।

इस संकलन में इक़बाल के तीन ऐसे शे'र पहली बार प्रकाशित हुए थे जो उनके किसी दूसरे संकलन में शामिल नहीं हैं[1]:

हलक़ा-ए-ज़ंजीर का हर जौहर पिनहाँ निकला,
आईना क़ैस की तस्वीर का जिन्दाँ निकला।

हम गिराँ जान के लाये थे अदम से बुलबुल,
बाग़-ए-हस्ती में मताअ नफ़स अरज़ाँ निकला।

वुसअत आफ़ज़ाई आशुफ़्तगी-ए-शौक़ न पूछ,
ख़ाक की मुट्ठी में पोशीदा बियाबाँ निकला।

---

1. बाद में ये शे'र इक़बाल के तीन अप्रकाशित काव्य संकलनों 'रख़्त-ए-सफ़र', 'वाक़ियात-ए-इक़बाल' और 'सरूद-ए-रफ़्ता' में और फ़क़ीर वहीदुद्दीन द्वारा लिखित इक़बाल की जीवनी 'रोज़गार-ए-फ़क़ीर' (द्वितीय खण्ड) के अन्त में 'कलाम-ए-इक़बाल' में शामिल हैं।

(ज़ंजीर की हर कड़ी का गुण हमने छुपा हुआ पाया, मजनू की तस्वीर के लिए शीशा मानो एक क़ैदख़ाना वन गया। हम तो इसे अत्यन्त मूल्यवान् समझ कर परलोक से लाये थे किन्तु संसार में यह जीवन वहुत ही सस्ता प्रतीत हुआ। मेरे शौक़ की तीव्रता के विस्तार की न पूछिए, यह तो एक मुट्ठी धूल में छिपे हुए पूरे वियावान के समान है।)

वाद में एक प्रवुद्ध और सुशिक्षित महिला ख़ातून अरशद (मौलाना रशीद अहमद अरशद थानवी की पत्नी) के सुझाव पर इक़वाल ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'जवाव-ए-शिकवा' का एक शे'र वदल दिया था। ख़ातून अरशद सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में लेख लिखा करती थीं और इन्होंने 1933 में महिलाओं के लिए एक लोकप्रिय तथा प्रतिष्ठित पत्रिका 'वानो' आरम्भ की थी। इनके अनुसार जव 1918 में इक़वाल की कविता 'जवाव-ए-शिकवा' प्रकाशित हुई थी तो इसमें ये शे'र शामिल थे :

क़ैस मिन्नत कश-ए-तनहाई सहरा न रहे,
शहर की खाए हवा बादिया पेमा न रहे।

वोह तो दीवाना है जंगल में रहे या न रहे,
ये ज़रूरी है हिजाब-ए-रुख़-ए-लैला न रहे।

शौक़-ए-तहरीर मज़ामीं में घुली जाती है,
बैठ कर पर्दे में बेपर्दा हुई जाती है।

(मजनू अव मरुस्थल के एकाकीपन के उपकार को न उठाये, उसे चाहिये कि वह शहर की हवा खाए और मरुस्थल में न भटकता फिरे। मजनू तो पागल है वह जंगल में रहे या न रहे उससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता परन्तु यह आवश्यक है कि अव लैला के चेहरे पर से पर्दा उठ जाये।

(मुसलमान औरतें) लेख लिखने के शौक़ में घुली जा रही हैं और परदे के अन्दर रह कर भी बेपरदा हो रही हैं।)

इस पर ख़ातून अरशद ने इक़बाल को एक पत्र लिखा और इस पर आपत्ति की कि इक़बाल ने मुसलमान महिलाओं के द्वारा लेख लिखने की आलोचना की है और उन्हें याद दिलाया कि अतीत में किस तरह, विशेष रूप से इस्लाम के गौरवपूर्ण प्रारम्भिक काल में, मुसलमान महिलाओं ने अनेक पुस्तकें लिखी थीं। उन्हें इसका बिल्कुल भी अनुमान नहीं था कि इक़बाल उनकी आपत्ति पर न केवल ध्यान देंगे अपितु उससे इस सीमा तक प्रभावित होंगे कि अपने उन शे'रों में ही परिवर्तन कर देंगे जिन पर ख़ातून को आपत्ति थी। ये परिवर्तित शे'र अब उनकी नज़्म में शामिल हैं। इक़बाल ने उनके पत्र का एक संक्षिप्त और विनम्र उत्तर भी दिया, जिससे उनके परिष्कृत संस्कारों और स्वाभाविक न्यायप्रियता का पता चलता है। उपर्युक्त पद्यांश के अन्तिम शे'र के स्थान पर उन्होंने यह शे'र रख दिया :

गिला-ए-जोर न हो, शिकवा-ए-बेदाद न हो,
इश्क़ आज़ाद हो, क्यों हुस्न भी आज़ाद न हो।

(अब तो न किसी बेवफ़ाई का गिला होना चाहिये न किसी अत्याचार की शिकायत होनी चाहिए, यदि इश्क़ को आज़ाद होने का अधिकार मिला है तो हुस्न भी क्यों आज़ाद न हो।)

इस प्रकार भोपाल ही की एक महिला के प्रेरणापूर्ण तर्क ने कवि को अपनी प्रसिद्ध नज़्म 'जवाब-ए-शिकवा' में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने पर विवश कर दिया। यह एक प्रकार से कवि का भोपाल और इसके शिक्षित और प्रबुद्ध वर्ग से परोक्ष का परिचय था। वास्तव में भोपाल में पहली बार वे 10 मई, 1931 को आये और

राज्य सरकार के उस अतिथि गृह 'क़सर-ए-राहत मंज़िल' में ठहरे जिसे अब गिराया जा चुका है। इस यात्रा के दौरान उन्होंने नवाब साहिब से भेंट की और उनके साथ मुसलमानों की राजनीतिक समस्याओं पर विचार-विनिमय किया।

सन् 1934 में इक़बाल गम्भीर रूप से बीमार हो गये। उनका गला ख़राब हो गया और उनके बात रोग ने उग्र रूप ले लिया। अगले वर्ष वे अपने अभिन्न मित्र सर रास मसऊद की सलाह पर, जो उस समय भोपाल के शिक्षा मन्त्री थे, इलेक्ट्रिक थेरेपी के द्वारा चिकित्सा के लिए भोपाल आये। अपने इस इलाज के सिलसिले में इक़बाल को तीन बार भोपाल आना पड़ा। इन यात्राओं में पहली बार भोपाल में 31 जनवरी, 1935 से 7 मार्च, 1935 तक, दूसरी बार 17 जुलाई, 1935 से 28 अगस्त, 1935 तक और तीसरी और अन्तिम बार 2-3 मार्च, 1936 से 8 अप्रैल, 1936 तक रहे। यद्यपि भोपाल में उनके निवास की कुल अवधि केवल चार मास के लगभग ही रही, किन्तु नवाब साहिब तथा सर रास मसऊद के साथ बौद्धिक तथा राजनीतिक स्तर पर उनका सम्पर्क 1931 में पहली भोपाल यात्रा से लेकर 1938 में उनके देहावसान तक लगभग सात वर्ष तक बना रहा।

जनवरी-मार्च, 1935 में अपनी पहली भोपाल यात्रा में उन्होंने सर रास मसऊद का आतिथ्य स्वीकार किया और उनके सरकारी निवास रियाज़ मंज़िल में ठहरे। इस अवसर पर अपने एक मास और सात दिन के पड़ाव में उन्होंने सात प्रख्यात कविताएँ लिखीं।[1]

---

1. (1) सुलतानी (पृ० 26), (2) तसव्वुफ (पृ० 29), (3) वही, (4) मक़सूद (पृ० 66), (5) हुकूमत (पृ० 76), (6) निगाह (पृ० 102), (7) उम्मीद (पृ० 108)

मई 1935 में भोपाल सरकार ने इक़बाल को 500 रुपये मासिक आजीवन पेन्शन स्वीकृत की। इक़बाल की कठिन आर्थिक संकट की स्थिति में यह आर्थिक सहायता उनके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। इस सहायता का महत्त्व इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने भरसक प्रयत्न और तत्कालीन प्रधान मन्त्री महाराज सर किशन प्रसाद के समर्थन से भी हैदराबाद की रियास्त से कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं कर सके। न ही उन्हें हैदराबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद मिला। यहाँ तक कि उन्हें साधारण न्यायाधीश का पद भी नहीं मिला जिसके वे प्रत्याशी थे और उस्मानिया विश्वविद्यालय के कुलपति का पद भी वे प्राप्त नहीं कर पाये, जिसके विषय में सर अकबर हैदरी ने अव्यक्त रूप में उन्हें वचन दिया हुआ था। उर्दू के लब्धप्रतिष्ठ आलोचक स्वर्गीय प्रो० रशीद अहमद सिद्दीक़ी के शब्दों में, "आने वाली पीढ़ियाँ भोपाल की इस अकेली उपलब्धि को कभी भुला न पायेंगी... इक़बाल को सांसारिक समस्याओं से मुक्ति दिलाना अत्यन्त पुण्य के कार्य से कम नहीं।"[1]

सन् 1935 के अप्रैल से अगस्त तक की अपनी भोपाल यात्रा के दौरान इक़बाल राजकीय अतिथि गृह शीश महल में ठहरे। इस अवधि में उन्होंने पाँच उत्कृष्ट कविताएँ लिखीं जो 'ज़रब-ए-कलीम' में शामिल हैं।[2]

जब वे अन्तिम बार भोपाल आये तो उनका स्वास्थ्य इस

---

1. गंज हाए गिरांमाया, पृ० 183

2. (1) सुब्ह, पृ० 6, (2) मोमिन, पृ० 41, (3) इबलीस का फ़रमान अपने सियासी फ़रज़न्दों के नाम, पृ० 148-149, (4) जमिअते अक़वाम-ए-शरक़, पृ० 151, (5) मुसोलिनी पृ० 152

सीमा तक ख़राब हो चुका था कि वे कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सके। उनके सुपुत्र जावेद भी इस बार उनके साथ थे। इसके बाद के उनके पत्रों से प्रतीत होता है कि वे एक बार फिर भोपाल आने पर विचार कर रहे थे परन्तु उनकी यह योजना फलीभूत नहीं हुई। अन्त में अपने देहावसान से दो दिन पहले 19 अप्रैल, 1938 को जनाब ममनून हसन ख़ान साहिब को उन्होंने अपना अन्तिम पत्र लिखा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इक़बाल ने अपना तीसरा उर्दू काव्य संकलन 'ज़र्ब-ए-कलीम' नवाब साहिब भोपाल को समर्पित किया है, और अपने एक शे'र में कहा है :

बगीर ईं हमा सरमायाए बहार अज़ मन,
कि गुल बदस्त-ए-तू अज़ शाख़ ताज़ा तर मानद।

(मेरा बहार का यह सम्पूर्ण संग्रह मेरी ओर से स्वीकार कीजिये, क्योंकि आपके हाथ में फूल शाखा से भी अधिक ताज़ा लगता है।)

इस शे'र का दूसरा मिस्रा जहाँगीर के दरबार के ईरानी कवि तालिब आमली से उद्धृत किया गया है। कहा जाता है कि तालिब ने शे'र का यह दूसरा मिस्रा ही पहले लिखा :

कि गुल बदस्त-ए-तू अज़ शाख़ ताज़ा तर मानद।

(आप के हाथ में फूल शाखा से भी अधिक ताज़ा लगता है।)

फिर छः मास तक निरन्तर प्रयत्नशील रहने पर भी उन्हें इस मिस्रे के लिए दूसरा उपयुक्त मिस्रा नहीं सूझा। अन्ततः उन्होंने शे'र को इस प्रकार पूरा किया :

ज़ गारत-ए-चमनत बर बहारे मिन्नत हास्त,
कि गुल बदस्ते तू अज़ शाख़ ताज़ा तर मानद।

(चमन को लूट कर तुमने वहारों पर उपकार किया है क्योंकि फूल तुम्हारे हाथ में शाख़ा से अधिक ताज़ा लगता है।)

आप सहमत होंगे कि इक़वाल का शे'र तालिव आमली के शे'र से अधिक उत्कृष्ट है ।

इक़वाल अपना अन्तिम संकलन 'अर्मुग़ान-ए-हिजाज़' भी, जिसका प्रकाशन उनके देहान्त के पश्चात् हुआ, नवाब साहिब को समर्पित करना चाहते थे। इक़वाल की प्रसिद्ध फ़ारसी मसनवी 'पस चे वायद करद ए अक़वाम-ए-शरक़' की रूपरेखा भी उनके भोपाल निवास के दौरान तैयार की गई थी। यद्यपि इसका पूरा कार्य उनकी भोपाल से वापसी के दो मास के पश्चात् सितम्बर, 1936 में सम्पन्न हुआ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि इक़वाल के जीवन और कृतित्व का कोई भी लेखा-जोखा भोपाल के सन्दर्भ के बिना पूरा नहीं हो सकता। यह शहर उनके जीवन में एक संग-ए-मील का सा महत्त्व रखता है। उनके जीवन के कष्टमय अन्तिम दिनों में भोपाल ने ही उन्हें वह शान्ति प्रदान की जो वड्र्सवर्थ के अनुसार काव्य रचना के लिए नितान्त आवश्यक है। मेरा अभिप्राय वड्र्सवर्थ के द्वारा की गई कविता की इस परिभाषा से है :

"Emotions recollected in tranquility."

(अर्थात् शान्त मनःस्थिति के क्षणों में अनुस्मृत मनोभावों को कविता कहते हैं।)

अन्त में, यह हमारा विशेष सौभाग्य है कि आज भी हमारे बीच एक ऐसा असाधारण व्यक्तित्व वर्तमान है, जिसका इस महा-कवि से बहुत निकट का सम्पर्क रहा है और जिसे उन्हें बहुत निकट से देखने का सौभाग्य मिला है। मेरा तात्पर्य जनाब ममनून हसन

ख़ान साहिब से है । इनको डा० इक़बाल की भोपाल यात्राओं के दौरान उनके सचिव के रूप में कार्य करने का गौरवमय अवसर प्राप्त हुआ था । यह सौभाग्य की बात है कि वे इक़बाल के विषय में अध्ययन करने के लिए आज भी हमारे मार्ग-दर्शन के लिए उपलब्ध हैं । इक़बाल का एक प्रशंसक होने के नाते मुझे उनसे ईर्ष्या होती है कि महाकवि को देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। एक तरुण पाकिस्तानी कवि ने अपने शे'र में मेरी भावनाओं को सुचारु रूप से व्यक्त किया है :

मैं वोह महरूम कि पाया न ज़माना तेरा,
तू वोह ख़ुशबख़्त कि जो मेरे ज़माने में नहीं ।

(ख़ुरशीद रिज़वी)

(मैं ऐसा वंचित हूँ कि मुझे तुम्हारा ज़माना न मिला, और तुम ऐसे भाग्यवान् हो कि मेरे युग में नहीं हो ।)

मैंने इस शे'र में कुछ परिवर्तन करके इसे निम्न रूप दिया है :

मैं वोह बदबख़्त कि जो तेरे ज़माना में न था,
तू वोह ख़ुशबख़्त कि जो मेरे ज़माना में नहीं ।

(मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उस युग में नहीं था जिसमें तुम थे, परन्तु तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम उस युग में नहीं हो जिस युग में मैं हूँ ।)

यह प्रसन्नता का विषय है कि अपने प्रबुद्ध मुख्यमन्त्री श्री अर्जुन सिंह के नेतृत्व में मध्य प्रदेश सरकार ने भोपाल से इक़बाल के सम्बन्धों की स्मृति को बनाए रखने के लिए कुछ विशिष्ट पग उठाए हैं । उर्दू कविता के सभी प्रेमी सामान्य रूप से और इक़बाल के सभी प्रशंसक विशेष रूप से मध्य प्रदेश सरकार के सदैव कृतज्ञ

रहेंगे कि उन्होंने उस शीश महल में एक इक़बाल संस्थान स्थापित करने का निर्णय लिया है जहाँ इक़बाल ने कभी निवास किया था । वास्तव में श्री अर्जुन सिंह ने विशेष अनुग्रहपूर्वक अपनी सरकार का यह संस्थान स्थापित करने का निर्णय मेरे भाषण का उद्घाटन करते समय घोषित किया । मेरे कुछ मित्रों का यह विचार है कि भोपाल में इस महत्त्वपूर्ण संस्थान की स्थापना मेरे भाषण की प्रेरणा से हुई है । जो भी हो मुझे इस संस्थान से सम्बद्ध होने पर प्रसन्नता और गर्व है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह संस्थान इक़बाल पर अध्ययन एवं शोध करने वालों के लिए उच्च कोटि का केन्द्र बनेगा और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त करेगा ।

अन्त में मैं हरियाणा साहित्य अकादमी का हार्दिक धन्यवाद करना चाहता हूँ कि उन्होंने इस पुस्तिका के प्रकाशन के द्वारा इक़बाल के राष्ट्रीय एकता के सन्देश का देश में प्रचार-प्रसार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

सैयद मुज़फ़्फ़र हुसैन बर्नी

इक़बाल और राष्ट्रीय एकता

इक़बाल के देहान्त के लगभग आधी शताब्दी बाद भी राष्ट्रीय एकता के विषय में उनके सन्देश के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ पाई जाती हैं। इक़बाल पक्के देशभक्त, साम्प्रदायिक सामंजस्य के प्रबल समर्थक और भारतीय विचारकों और सन्तों के अत्यधिक प्रशंसक थे। इस्लाम के प्रति गहरे अनुराग के बावजूद उन्होंने भारतीय चिन्तन और भारतीय दर्शन का अध्ययन किया और इसके तत्त्व को ग्रहण किया। हमारे देश के इतिहास के इस नाज़ुक दौर में जब कि जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा क्षेत्रीयता के झगड़े खड़े हो रहे हैं तथा चिन्ता का कारण बने हुए हैं, उनका सन्देश हमारे लिए विशेष महत्त्व रखता है।

मातृभूमि से प्रेम

मातृभूमि से प्रेम राष्ट्रीय एकता का आधार है। इक़बाल ने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में देश प्रेम की कुछ अत्यधिक हृदयस्पर्शी तथा भावपूर्ण कविताएँ लिखी हैं।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इक़बाल की उर्दू कविताओं का पहला संकलन 'बाँग-ए-दरा' (1924) एक सम्बोध-गीति से प्रारम्भ होता है। इक़बाल ने जब सन् 1899 में लाहौर में अंजुमन हिमायत-ए-इस्लाम के वार्षिक सम्मेलन में अपनी कविता 'नाला-ए-यतीम' पढ़ी तो उन्हें अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त हुई थी। तथापि उनका

प्रथम उर्दू संकलन इस कविता के साथ प्रारम्भ नहीं होता । वस्तुतः, उन्होंने अपनी इस कविता को अपने किसी भी संग्रह में सम्मिलित नहीं किया । इक़बाल ने हिमालय पर अपनी कविता में भारत की प्राचीन सभ्यता और इस अद्भुत पर्वत शृंखला के सौन्दर्य का गुण-गान किया है । उनके लिए हिमालय केवल एक पर्वत नहीं है, यह भारत की अखण्डता की सुरक्षा का प्रहरी है :

ऐ हिमाला ! ऐ फ़सील-ए-किश्वर-ए-हिन्दोस्तान,
चूमता है तेरी पेशानी को झुक कर आसमान ।

(ऐ हिमालय ! तुम भारत देश की फ़सील हो, आकाश झुक कर तुम्हारा माथा चूमता है ।)

इक़बाल ने देश में रहने वाले विभिन्न समुदायों तथा सम्प्रदायों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता पर भी बल दिया है । विशेष रूप से बच्चों के लिए अपनी कविताओं में उन्होंने कहा है कि यद्यपि इस देश में विभिन्न नस्लों से सम्बन्ध रखने वाले, विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले तथा विभिन्न धर्मों के अनुयायी जन समुदाय रहते हैं, तथापि इस अनेकता में भी एक प्रकार की एकता विद्यमान है । 'तराना-ए-हिन्दी' उनकी देश प्रेम की कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कविता में मातृभूमि के प्रति उनका अगाध प्रेम अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं उदात्त ढंग से अभिव्यक्त हुआ है । मुझे विश्वास है कि यदि देश का दुःखद विभाजन न हुआ होता तो यह कविता देश के राष्ट्रगान के रूप में चुनी जाती ।

महात्मा गांधी ने सन् 1938 में साहित्यिक पत्रिका 'जौहर' के सम्पादक को पत्रिका के इक़बाल विशेषांक के विषय में लिखे पत्र में 'तराना-ए-हिन्दी' की प्रशंसा की थी । उर्दू में लिखा उनका यह पत्र इस प्रकार है :

"आपका ख़त मिला । डा० इकबाल मरहूम के बारे में क्या लिखूँ ? लेकिन मैं इतना तो कह सकता हूँ कि जब उनकी मशहूर नज़्म 'हिन्दोस्ताँ हमारा' पढ़ी तो मेरा दिल भर आया और बड़ौदा जेल में तो सैंकड़ों बार मैंने इस नज़्म को गाया होगा । इस नज़्म के अल्फ़ाज़ मुझे बहुत ही मीठे लगे और यह ख़त लिखता हूँ तब भी वोह नज़्म मेरे कानों में गूँज रही है ।"

यह उल्लेख करना रोचक होगा कि पं० रवि शंकर द्वारा तैयार की गयी दूरदर्शन की नयी संकेत धुन इसी कविता पर आधारित है । सन् 1975-76 में स्वयं स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा इसे अनुमोदित किया गया था, उस समय मैं सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय में सचिव था । वस्तुतः, यह सुझाव ही श्रीमती इन्दिरा गांधी की ओर से आया था कि दूरदर्शन की नयी संकेत धुन इस राष्ट्रीय गीत पर बनायी जाये ।

एक अन्य कविता 'हिन्दुस्तानी बच्चों का क़ौमी गीत' में इक़बाल ने देश के बहु-धर्म स्वरूप के बावजूद इसकी एकता का गीत गाया है । वे कहते हैं :

चिश्ती ने जिस ज़मीं में पैग़ाम-ए-हक़ सुनाया,
नानक ने जिस चमन में वहदत का गीत गाया ।
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया,
जिसने हिजाज़ियों से दश्त-ए-अरब छुड़ाया ।
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है ।

(चिश्ती ने जिस धरती पर सत्य का सन्देश सुनाया, गुरु नानक ने जहाँ यह सन्देश दिया कि ईश्वर एक है, तुर्कों तथा मंगोलों ने भी जिस देश को अपनाया, तथा अरब भी साऊदी अरब छोड़ कर जिस देश में आ बसे, वही मेरा देश है।)

अपनी कविता 'बच्चों की दुआ' में वे कहते हैं कि व्यक्ति का जीवन ऐसा होना चाहिये कि व्यक्ति अपने देश को ऐसे अलंकृत करे जैसे पुष्प उपवन को करता है :

हो मिरे दम से यूँ ही मेरे वतन की ज़ीनत,
जिस तरह फूल से होती है चमन की ज़ीनत ।

उनकी कविता 'नया शिवाला' में देशप्रेम की भावना को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। वे कहते हैं :

ख़ाक-ए-वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है ।

(मातृ-भूमि की धूलि का कण-कण मेरे लिये देवता के समान है।)

इक़बाल देश के विभिन्न समुदायों में परस्पर कलह तथा फूट के प्रति अत्यधिक सचेत थे। इस कविता में वे इस कलह के कारणों का विश्लेषण करते हैं तथा धार्मिक भिन्नताओं को इसका मुख्य कारण ठहराते हैं। वे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को भेद-भाव मिटा कर सामंजस्यपूर्वक तथा मैत्री के साथ रहने का परामर्श देते हैं और एकता, पारस्परिक प्रेम तथा राष्ट्रीयता पर आधारित नये भारत के निर्माण का स्वप्न देखते हैं। उनके अनुसार विभिन्न समुदायों में चिरस्थायी सद्भाव, प्रेम और भ्रातृभाव स्थापित करने का एकमात्र साधन यह है कि वे एकमात्र मूर्ति की पूजा करें, और वह मूर्ति है हिन्दुस्तान। सम्भवतः भारत की किसी अन्य भाषा में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर कोई ऐसी कविता नहीं है जो इस कविता के समान सुन्दर तथा हृदयस्पर्शी हो ।

फूट पर क्षोभ

साम्प्रदायिक फूट तथा कलह के निरन्तर बने रहने के कारण इक़बाल बहुत क्षुब्ध थे । उनका यह क्षोभ उनकी कविता 'सदाए दर्द'

में अभिव्यक्त हुआ । वे कहते हैं :

जल रहा हूँ कल नहीं पड़ती किसी पहलू मुझे,
हाँ डबो दे ऐ मुहीत-ए-आब-ए-गंगा तू मुझे ।

(मैं जल रहा हूँ तथा बेचैन हूँ । मुझे किसी करवट चैन नहीं पड़ती । ऐ गंगा के जल ! तू मुझे अपने में डूबो ले ।)

इस काल में रचित उनकी अनेक कविताओं में एकता के लिए उनकी उत्कट अभिलाषा, भेदभाव और वैमनस्य का त्याग करने के लिए उनकी अपील तथा एकता के लिए उनका सन्देश अभिव्यक्त हुए हैं । वे कहते हैं :

सरज़मीं अपनी क़यामत की निफ़ाक़ अंगेज है,
वस्ल कैसा ! याँ तो इक कर्ब-ए-फ़िराक़ आमेज है ।

(हमारा देश विनाशकारी फूट से ग्रस्त है, एकता यहाँ कहाँ है ? केवल दुःखदायी फूट ही फूट है ।)

इक़बाल का विश्वास था कि धर्म मूलतः एकता उत्पन्न करने वाली शक्ति है । 'तराना-ए-हिन्दी' में वे कहते हैं :

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा ।

(कोई धर्म परस्पर वैर-विरोध नहीं सिखाता । हम सभी भारतीय हैं, और भारत हमारा देश है ।)

उनकी एक अन्य कविता 'सैयद की लोह-ए-तुरवत पर' में साम्प्रदायिक एकता के लिए उनका सन्देश सर्वथा स्पष्ट और मुखर है :

वा न करना फ़िरक़ा बन्दी के लिए अपनी जुबाँ,
छुप के है बैठा हुआ हंगामा-ए-महशर यहाँ ।

(सांप्रदायिकता क पक्ष में अपनी ज़वान मत खोलो। इसमें सर्वनाश छुप कर बैठा हुआ है।)

यह स्मरणीय है कि सर सैयद अहमद ख़ान ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए कठोर प्रयास किया था। वे सन् 1911 में ब्रिटिश दरबार से एक वार इसलिए लौट आये थे कि भारतीयों को अंग्रेज़ों के वरावर नहीं विठाया गया था।

इक़वाल का विश्वास था कि यदि अकवर के दीन-ए-इलाही और कबीर के उपदेशों ने जन साधारण को प्रभावित किया होता तो जातियों और सम्प्रदायों के वीच भेदभाव वहुत कम हो जाते। 29 दिसम्वर, 1930 को इलाहावाद में आयोजित आल इंडिया मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था :

"रेनान का कहना है कि 'मनुष्य को न तो उसकी नस्ल दास वनाती है, न उसका धर्म, और न नदियों का प्रवाह और न पर्वत श्रृंखलाएँ ही उसे दास वनाती हैं। प्रबुद्ध एवं सहृदय व्यक्तियों का एक विशाल समूह एक ऐसी नैतिक चेतना को जन्म देता है जिसे "राष्ट्र" कहते हैं।' ऐसी रचना सर्वथा सम्भव है, यद्यपि इसके लिए दीर्घकाल तक मानव का नव-निर्माण करने और उसमें नयी भावना फूँकने वाली कठोर प्रक्रिया अपेक्षित है। यदि कवीर के उपदेशों और अकवर के 'दीन-ए-इलाही' ने इस देश के जन साधारण को प्रभावित किया होता तो ऐसे नवनिर्माण की कल्पना साकार हो गई होती। परन्तु अनुभव यह रहा है कि भारत की विभिन्न जाति-इकाइयाँ तथा धार्मिक इकाइयाँ अपनी-अपनी पृथक् सत्ताओं को एक वृहत्तर समूह में विलीन करने के लिए

तत्पर नहीं हैं। प्रत्येक समूह अपने सामूहिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अत्यधिक चिन्तित है। ऐसी नैतिक चेतना के निर्माण के लिए, जो रेनान के अनुसार राष्ट्र का मूल तत्त्व है, वह मूल्य चुकाने की आवश्यकता है जिसे चुकाने के लिए भारत के लोग तैयार नहीं हैं। अतः भारतीय राष्ट्र की एकता नकारात्मकता पर आधारित न होकर अनेकों के पारस्परिक सद्भाव और सहयोग पर आधारित होनी चाहिए।"

इक़बाल इस बात से भली प्रकार परिचित थे कि सभी साम्राज्यवादी शक्तियाँ "फूट डालो और शासन करो" की नीति का अनुसरण करके जीवित रहती हैं। वे अपने देशवासियों को आगाह करते हैं कि विभिन्न समुदायों में व्याप्त तथा निरन्तर बढ़ रहे झगड़े भारत पर शासन करने वाली साम्राज्यवादी शक्ति के लिए सहायक बनते हैं। अपनी कविता 'तस्वीर-ए-दर्द' में उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सभी विकारों तथा राष्ट्रीय एकता में बाधक सभी कारणों का विश्लेषण किया है। अपने देशवासियों का आह्वान करते हुए वे उन्हें सावधान करते हैं कि वे अपने अतीत के गौरव में न खो जायें, अपितु वर्तमान परिस्थितियों तथा भावी प्रवृत्तियों की ओर भी ध्यान दें। वे समझते थे कि देश की दुर्दशा के लिए केवल आँसू बहाना पर्याप्त नहीं है :

रुलाता है तिरा नज़ारा ए हिन्दोस्ताँ मुझको,
कि इबरतख़ेज़ है तेरा फ़साना सब फ़सानों में।

निशान-ए-बर्ग-ए-गुल तक भी न छोड़ इस बाग़ में गुलचीं,
तिरी क़िस्मत से रक़्म आराइयाँ हैं बाग़बानों में।

वतन की फ़िक्र कर नादाँ मुसीबत आने वाली है,
तिरी बरबादियों के मशवरे हैं आसमानों में।

(ऐ भारत! तुम्हारा हाल देख कर मुझे रोना आता है। तुम्हारी कहानी सभी कहानियों से अधिक शिक्षाप्रद है। ऐ लुटेरे! इस उपवन में फूल की पत्ती का चिह्न भी न छोड़, तेरा सौभाग्य है कि इस उपवन के माली परस्पर लड़ रहे हैं। ऐ मेरे अनजान देशवासी! देश पर विपत्ति आने वाली है, आकाश में तुम्हारे विनाश के ही चर्चे हैं।)

वे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जातियों और सम्प्रदायों में झगड़े राष्ट्रों के विनाश का कारण बने हैं। वे इस बात पर शोक प्रकट करते हैं कि देशवासियों को अपने देश के हित की कोई चिन्ता नहीं है :

उजाड़ा है तमीज़-ए-मिल्लत-ओ-आईन ने क़ौमों को,
मिरे अहले वतन के दिल में कुछ फ़िक्र-ए-वतन भी है।

(सम्प्रदाय तथा धर्म के भेदभाव ने जातियों का विनाश किया है। क्या मेरे देशवासियों के मन में मातृभूमि की भी कोई चिन्ता है?)

उन्हें दृढ़ विश्वास था कि साम्प्रदायिक एकता विश्वजनीन भ्रातृत्व का आधार है :

मोहब्बत ही से पायी है शफ़ा बीमार क़ौमों ने,
किया है अपने बख़्त-ए-ख़ुफ़्ता को बेदार क़ौमों ने।

(रोगग्रस्त जातियों का उपचार प्यार के द्वारा ही संभव है। प्यार के माध्यम से ही उन्होंने अपने दुर्भाग्य की निद्रा से छुटकारा पाया है।)

उन्होंने यहाँ तक कहा है कि मनुष्य तथा मनुष्य के बीच भेद-भाव पैदा करने का ही दूसरा नाम ग़ुलामी है तथा मानव प्रेम ही स्वतंत्रता का

आधार है :

जो तू समझे तो आज़ादी है पोशीदा मोहब्बत में,
ग़ुलामी है असीर-ए-इमतियाज़-ए-मा-ओ-तू रहना ।

(यदि तू समझ तो आज़ादी प्यार में ही छुपी है । ग़ुलामी मनुष तथा मनुष्य में भेद का बंधन है ।)

अपनी कविता 'ख़फ़तगान-ए-ख़ाक स इस्तिफ़सार' में व यह जानने वे लिए उत्सुक हैं कि क्या परलोक में भी भारतीय अपनी वास्तविक क्षमत से उतने ही अनभिज्ञ हैं जितने कि वे इस लोक में हैं और क्या वे वहाँ भ साम्प्रदायिकता और जातिवादिता के भेदभाव के शिकार हैं :

वां भी इनसां अपनी असलियत से बेगाने हैं क्या ?
इमतियाज़-ए-मिल्लत-ओ-आईन के दीवाने हैं क्या ?

राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण से इक़बाल का विमुख होना

अपनी काव्य-रचना के दूसरे काल में, जो 1905 से 1908 तक उनके यूरोप में आवास से मेल खाता है, इक़बाल के राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन आया । यह उनके द्वारा यूरोप में देखी गयी परिस्थिति का परिणाम था । उन्हें यह देख कर बड़ी ग्लानि हुई कि देश-प्रेम की विकृत भावना ने संकीर्ण जातिवाद और विसंवादी राष्ट्रीयता का रूप ले लिया जिसके परिणामस्वरूप यूरोप में शक्तिशाली स्वतन्त्र राष्ट्रीय प्रशासन अस्तित्व में आये । इन प्रशासनों में अपना प्रभुत्व बढ़ाने और नये उपनिवेशों की स्थापना करने के लिए होड़ शुरू हो गयी । इन राष्ट्रों पर यह भी भूत सवार था कि छोटे राष्ट्रों को अपने अधीन किया जाये । इक़बाल ने यूरोप की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया का विश्लेषण बड़े तर्कसंगत ढंग से किया । उन्होंने यह तर्क दिया कि मार्टिन लूथर के उदय के पश्चात् ईसाई धर्म यूरोप में एकता बनाये रखने की शक्ति खो बैठा । इसका

परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य अस्तित्व में आये जो क्षेत्रीय विस्तारवाद की भावना से ओतप्रोत थे। उन्होंने यह परिणाम निकाला कि राष्ट्रवाद का संकीर्ण दृष्टिकोण विभिन्न देशों में परस्पर विरोध की भावना को वढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है और यह भविष्य के लिए कोई अच्छा शकुन नहीं है। वे कहते हैं :

इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सबसे वतन है,
जो पैरहन उसका है वोह मज़हब का कफ़न है।

(इन नये देवताओं में स्वदेश सवसे वड़ा देवता है, जो उसकी पोशाक है वह धर्म का कफ़न है।)

उनके विचार में पश्चिमी सभ्यता अपने ह्रास के कगार पर खड़ी थी। विस्तारवाद और उपनिवेशवाद की राजनीति के कारण विनाश होना अनिवार्य था। उन्होंने अपनी दूरदर्शी वुद्धि से यह भविष्यवाणी की कि यूरोप वहुत शीघ्र एक राजनीतिक आत्महत्या करेगा। इस अवधि में रचित एक कविता में उन्होंने कहा है :

तुम्हारी तहज़ीव अपने हाथों से आप ही ख़दकुशी करेगी,
जो शाख़-ए-नाज़ुक पे आश्याना बनेगा नापायेदार होगा।

(तुम्हारी सभ्यता अपने हाथों से ही आत्महत्या करेगी। कोमल शाखा पर वना घोंसला चिरस्थायी नहीं हो सकता।)

उनके ये शब्द तव कितने सत्य सिद्ध हुए जव सारा यूरोप प्रथम विश्व युद्ध की आग की लपेट में आ गया जिसने इसकी सभ्यता और राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था को तहस-नहस करके रख दिया।

उत्तरवर्ती काल में एक आधुनिक अंग्रेज़ी कवि डब्ल्यू०एच० आडन ने भी यह देखा कि यूरोप की परिस्थितियाँ उससे भिन्न नहीं थीं जैसी कि

वे इस शताब्दी के प्रारम्भ में थीं :

In the nightmare of dark,
All the dogs of Europe bark,
And the living nations wait,
Each sequestered in its hate !

(रात के भयानक अन्धकार में, यूरोप के सारे कुत्ते भौंक रहे हैं और सिसकते राष्ट्र प्रतीक्षा में हैं, प्रत्येक घृणा की भावना में संलिप्त !)

ये परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इक़बाल को राष्ट्रवाद की भावना से पूर्णतः विमुख कर दिया। वे एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की खोज करने लगे जो उच्च एवं उदात्त मूल्यों पर आधारित हो। उन्होंने सोचा कि इसी नयी सामाजिक व्यवस्था के लिए इस्लाम एक आधार प्रस्तुत करता है। परन्तु घटनाओं से स्पष्ट है कि उनकी यह आशा भी भ्रामक थी। इक़बाल की यह आकांक्षा कि इस्लाम के नाम पर सारी मानव जाति में एकता स्थापित हो सकती है, निरन्तर जारी ईरान-ईराक़ युद्ध से ही छिन्न-भिन्न हो गयी होती। परन्तु मूलतः उन्हें ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की खोज थी जो भ्रातृत्व, मानवीय एकता, राष्ट्रों के मध्य सामंजस्य और मनुष्यता के गौरव पर आधारित हो। उनका यह विचार था कि यदि देश भक्ति की भावना का उच्चतर लक्ष्यों के लिए प्रयोग नहीं किया जाता तो यह कमज़ोर राष्ट्रों के शोषण का कारण बन सकती है। सम्भवतः डा० जानसन ने इसीलिए कहा था "Patriotism is the last refuge of a scoundrel."(देशभक्ति दुष्ट व्यक्ति का अन्तिम सहारा है।) इक़बाल राष्ट्रवाद की संकीर्ण भावना के कट्टर विरोधी हो गये और एक प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का प्रचार करने लगे। इक़बाल के आलोचक यह आक्षेप करते हैं कि उन्होंने देशप्रेम की भावना का पूर्णतः त्याग कर दिया और वे इसके स्थान पर धर्म को मानव जीवन के उच्च लक्ष्य

के रूप में प्रस्तुत करने लगे। परन्तु जैसा कि मैंने स्पष्ट किया है यह ठीक नहीं है। उन्होंने उस कट्टरता की आलोचना की और उसका विरोध किया जिसके अनर्थकारी परिणाम हो सकते हैं और हुए भी हैं। यद्यपि उन्होंने राष्ट्रवादी मान्यताओं से नाता तोड़ लिया तथापि अपने देश के प्रति उनका प्रेम पूर्ववत् बना रहा। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि उत्तरवर्ती काल में रचित उनकी कविताओं में भी अपने देश के प्रति उनका अगाध और अक्षुण्ण प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचना 'जावेद नामा', जो दान्ते की *Divine Comedy* के आधार पर लिखी गई है, पहली बार 1932 में फ़ारसी में प्रकाशित हुई थी। इस कविता में वह अपने गुरु महान् ईरानी सूफ़ी जलालुद्दीन रूमी के साथ अन्य लोकों की सैर करते हैं, जहाँ उनकी भेंट भारतीय ऋषि विश्वामित्र से होती है। इन्हें वे "जहाँदोस्त" के रूप में सम्बोधित करते हैं, जोकि "विश्वामित्र" शब्द का शाब्दिक अनुवाद है। एक पौराणिक कथा के अनुसार विश्वामित्र कन्नौज के सेनापति थे। परन्तु वे एक साधु, एक विचारक और ज्ञान का संरक्षण करने वाले भी थे। उन्होंने अपने व्यापक ज्ञान, विस्तृत तथा विविध अध्ययन और चिन्तन के आधार पर ख्याति प्राप्त की और राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि कहलाए। यह भी कहा जाता है कि वे राम के गुरु थे।

'जावेद नामा' में विश्वामित्र यह भविष्यवाणी करते हैं कि पूर्व के उत्थान का समय आ गया है और शीघ्र ही एक नये सूर्य का उदय होगा[1]

गुफ़्त हंगाम-ए-तुलू-ए-ख़ावर अस्त,
आफ़्ताब-ए-ताज़ा ऊ रा दर बर अस्त।
रुस्तख़ीज़े दर किनारश दीदा अम,
लरज़ा अन्दर कोह सारश दीदा अम।
अशियाँ रा सुबह ईद आँ साअते,
चूं शवद बेदार चश्म-ए-मिल्लते।

1. मुक़ाम-ए-इक़बाल', सैयद अशफ़ाक़ हुसैन।

(उन्होंने कहा कि यह पूर्व के जागृत होने का समय है और एक नया सूर्य इसके पहलू में है। मैंने इसके वातावरण में एक आन्दोलन और इसके पर्वतों में कम्पन देखा है। स्वर्ग में रहने वालों के लिए वह ईद की उषा होगी जब एक राष्ट्र आलस्य का त्याग करेगा।)

इन शब्दों में इक़बाल की इस उत्कट इच्छा की सुन्दर अभिव्यक्ति है कि वह अपने देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे।

इक़बाल के अनुसार देशद्रोह सबसे घृणित अपराध है। 'जावेद नामा' में वे लिखते हैं कि बुध ग्रह पर नरक का सबसे निचला तथा निकृष्ट भाग उन लोगों के लिए आरक्षित है जो देशद्रोह के दोषी हैं। इस ग्रह पर भारत की आत्मा प्रकट होती है तथा भारतीय इतिहास के उत्तर काल के दो देशद्रोहियों, बंगाल के मीर जाफ़र तथा दक्षिण के मीर सादिक़ को धिक्कारती है। जाफ़र ने सिराजुद्दौला से ग़द्दारी करके लार्ड क्लाइव का साथ दिया था तथा सादिक़ ने टीपू सुल्तान को धोखा दिया था। अपने एक प्रसिद्ध पद्य में इक़बाल कहते हैं कि बंगाल का मीर ज़ाफ़र तथा दक्षिण का मीर सादिक़ दोनों न केवल मानवता के लिए अपितु अपने देश और अपने धर्म के लिए भी लज्जा का कारण हैं :

जाफ़र अज़ बंगाल ओ सादिक़ अज़ दक्कन,
नंगे इन्साँ, नंगे दीन, नंगे वतन।

इन देशद्रोहियों की निन्दा के लिए सम्भवतः इससे कठोर शब्द मिलने मुश्किल हैं जिनका इक़बाल ने प्रयोग किया है।

उन्होंने भारत की आत्मा के क्लेश का वर्णन इन शब्दों में किया है :

बा चुनीं ख़ूबी नसीबश तौक़-ओ-बन्द,
बर लबे ओ नालाहाए दर्दमन्द।

(इतने गुणों के बावजूद इसके भाग्य में पराधीनता की ज़ंजीरें हैं और इसके ओठों पर दर्द भरे और हृदयविदारक विलाप हैं।)

देश के सम्मान के प्रति अपने देशवासियों की विमुखता पर भी वे अपनी गहन वेदना प्रकट करते हैं :

शमा-ए-जाँ-अफ़सुरदा दर फ़ानूस-ए-हिन्द,
हिन्दियाँ बेगाना अज नामूस-ए-हिन्द।

(भारत में आत्मा की लौ टिमटिमा रही है, और भारतीय अपने देश के गौरव के प्रति पूर्णतः विमुख हैं।)

अपने दश के प्रति उनका प्रेम इन शब्दों में भी अभिव्यक्त होता है जो टीपू सुल्तान के मुख से कावेरी नदी को सम्बोधित करके कहे गये हैं :

रूद-ए-कावेरी ! यके नरमक ख़िराम,
ख़स्ता ई शायद कि अज सैर-ए-द्वाम।
दर कुहस्ताँ उम्रहा बालीदा ई,
राह-ए-ख़ुद-रा बा मजह कावीदा ई।
ए मिरा ख़ुशतर ज जेहून-ओ-फ़िरात,
ए दक्कन रा आब तू आब-ए-हयात।

(ओ कावेरी ज़रा धीरे वह, तू शायद चलते-चलते थक गयी है। तू पर्वतों में शताब्दियों तक बही है और तूने अपना मार्ग अपनी पलकों से खोद कर बनाया है। तू मुझे जेहून तथा फ़िरात से अधिक प्रिय है और तेरा जल दक्कन के लिए अमृत है।)

यहाँ यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि उर्दू अथवा फ़ारसी के किसी कवि ने कावेरी नदी पर कोई शे'र नहीं कहे हैं।

इनकी मसनवी 'पस चे बायद करद' में (जो उनकी मृत्यु से दो वर्ष

पूर्व 1936 में पहली वार छपी थी) एक कविता का शीर्षक है 'अश्के चन्द वर इफ़तिराक़-ए-हिन्दियाँ', इसमें वे कहते हैं :

हिन्दियाँ बा यक दिगर आवेख़तन्द,
फ़ितना हाए कुहना रा अंगेख़तन्द ।
ता फ़िरंगी क़ौमे अज़ मग़रिब ज़मीं ।
सालिस आमद दर नज़ाअ कुफ़्-ओ-दीं ।

(भारतीय परस्पर लड़ने लगे, उन्होंने पुराने झगड़े फिर उखाड़ लिये । यहाँ तक कि पश्चिम से फिरंगी आकर मध्यस्थ वन बैठे ।)

इकवाल[1] के अनुसार इन साम्प्रदायिक विवादों का क्रान्ति के सिवा और कोई समाधान नहीं है :

कस नदानद जलवा-ए-आब अज़ सराब,
इन्क़िलाब ! ऐ इन्क़िलाब ! ऐ इन्क़िलाब !

(जल और मृगमरीचिका में कोई भी पहचान नहीं कर सकता अतएव क्रान्ति ! क्रान्ति ! क्रान्ति !)

यह क्रान्ति[2] अनिवार्यतः राजनीतिक तो होगी ही, परन्तु यह बौद्धिक तथा भावात्मक भी होनी चाहिये ।

इनके उर्दू कविता के अन्तिम संकलन 'ज़र्ब-ए-कलीम' में भी एक कविता 'शुआ-ए-उमीद' शीर्षक से है, जिसका केन्द्र-विन्दु भारत है । उस समय भी इक़वाल यही समझते थे कि भारत की भौगोलिक एकता

---

1. 'इक़वाल : नयी तश्कील', प्रो० अज़ीज़ अहमद ।
2. वही ।

उसी प्रकार अविभाज्य है जिस प्रकार जीवन के अनेक आधारभूत मूल्य[1] :

छोड़ूगी न मैं हिन्द की तारीक फ़िज़ा को,
जब तक न उठें ख़्वाब से मर्दान-ए-गिराँ ख़्वाब ।
ख़ाबर की उमीदों की यही ख़ाक है मर्कज,
इक़बाल के अश्कों से यही ख़ाक है सेराब ।
इस ख़ाक से उठे हैं वोह ग़व्वास-ए-मआनी,
जिन के लिए हर बहर-ए-पुर आशोब है पायाब ।
जिस साज़ के नग़मों से हरारत थी दिलों में,
महफ़िल का वही साज़ है बेगाना-ए-मिज़राब ।
बुतख़ाने के दरवाज़े पे सोता है बरहमन,
तक़दीर को रोता है मुसलमाँ तह-ए-महराब ।
मशरिक से हो बेज़ार न मग़रिब से हज़र कर,
फ़ितरत का तक़ाज़ा है कि हर शब को सहर कर ।

(जब तक कि निद्राग्रस्त जनता पूरी तरह जागरूक नहीं हो जाती, मैं भारत के अन्धकारमय वातावरण को नहीं छोड़ूगी । पूर्व की आशाओं का सार यही है । इक़बाल ने अपने आँसू इस धरती पर बिछाये हैं । इसी धरती पर उन महान् विचारकों ने जन्म लिया है, जिनके चिन्तन में समुद्र सी गहराई थी । जिस वीणा के संगीत से हृदय स्पंदित होता था, वह वीणा अब मौन है । पुजारी मन्दिर के दरवाज़े पर सो रहा है, और मुल्ला मस्जिद की महराब के नीचे अपने भाग्य को रो रहा है । न पूर्व से निराश हो, और न पश्चिम से किनारा करो । प्रकृति की माँग है कि प्रत्येक रात्रि को प्रभात में बदल दो ।)

अन्ततः, अपनी मृत्यु से एक मास पूर्व इक़बाल ने मार्च, 1938 में राष्ट्रीयता के विषय में अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया, "दीर्घकाल से

---

1. 'रूह-ए-इक़बाल', पृ० 233, सैयद शौकत सब्ज़वारी द्वारा उद्धृत

राष्ट्र देशों से तथा देश राष्ट्रों से सम्बद्ध रहे हैं। हम सब भारतीय हैं और भारतीय के नाम से जाने जाते हैं क्योंकि हम विश्व के उस भाग के निवासी हैं जो भारत के नाम से विख्यात है। इसी प्रकार चीनी, अरब, जापानी और ईरानी सभी अपने देश के नाम से जाने जाते हैं। मातृ-भूमि की अवधारणा एक भौगोलिक संज्ञा मात्र है और इसका इस्लाम से कोई विरोध नहीं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपनी जन्मभूमि से प्यार करता है और इसके लिए यथाशक्ति बड़े से बड़ा बलिदान देने के लिए तैयार रहता है।"[1]

भारतीय सन्तों का आदर

चिरस्थायी राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करने और उसे बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी अन्य धर्मों और सम्प्रदायों के सन्तों और धार्मिक नेताओं के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना रखें। इस सम्बन्ध में इक़बाल ने उर्दू साहित्य में एक नयी परम्परा स्थापित की और भारतीय सन्तों और धार्मिक नेताओं पर कविताएँ लिखीं। वे रामचन्द्र जी पर अपनी कविता में उनके साहस, पवित्रता और मानवता के प्रति गहरे प्रेम की प्रशंसा करते हैं:

तलवार का धनी था शुजाअत में मर्द था,
पाकीज़गी में जोश-ए-मोहब्बत में फ़र्द था।

(राम तलवार के धनी थे, शौर्य में सच्चे शूरवीर थे,
पवित्रता और प्रेम की प्रगाढ़ता में अद्वितीय थे।)

यह ध्यान देने योग्य है कि यह कविता उनके कवि जीवन के तीसरे दौर की है जिसे प्रायः 'इस्लामी दौर' कहा जाता है। इसी प्रकार उन्होंने बाबा नानक पर एक हृदयस्पर्शी कविता लिखी और उनके एकेश्वरवाद की प्रशंसा की है। इस कविता में उन्होंने महात्मा

1. 'The Poet of the East', Abdulla Anwar Beg.

बुद्ध की भी प्रशंसा की और उनके उद्देश्यों के प्रति अपने देशवासियों की उदासीनता पर खिन्नता प्रकट की। देश में अछूतों की दयनीय अवस्था और उनके लिए सहानुभूति के अभाव पर भी गहरी संवेदना व्यक्त की :

क़ौम ने पैग़ाम-ए-गौतम की ज़रा परवा न की,
क़द्र पहचानी न अपने गौहर-ए-यक दाना की।
आश्कार उसने किया जो ज़िन्दगी का राज़ था,
हिन्द को लेकिन ख़याली फ़ल्सफ़े पर नाज़ था।
आह ! शूद्र के लिए हिन्दोस्ताँ ग़मख़ाना है,
दर्द-ए-इन्सानी से इस बस्ती का दिल बेगाना है।
फिर उठी आख़िर सदा तौहीद की पंजाब से,
हिन्द को इक मर्द-ए-कामिल ने जगाया ख़्वाब से।

(देश ने गौतम के सन्देश की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने अद्वितीय मोती की महत्ता को नहीं पहचाना। उसने तो जीवन के रहस्य को संसार के सम्मुख खोल दिया, परन्तु भारत को तो केवल सैद्धान्तिक दर्शन पर ही गर्व था। बड़े खेद का विषय है कि शूद्र के लिए भारत दुःख का घर है। यह एक ऐसी बस्ती है जिसका हृदय मानव की पीड़ा से परिचित नहीं है। अन्त में पंजाब की धरती से "ईश्वर एक है" की आवाज़ उठी और एक महापुरुष ने भारत को स्वप्न से जगा दिया।)

एक प्रमुख हिन्दू सन्त स्वामी रामतीर्थ पर अपनी कविता में वे उनके उपदेशों का सार इन पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं :

नफ़ी हस्ती इक किरिश्मा है दिल-ए-आगाह का,
ला के दरया में निहाँ मोती है इल्लल्लाह का।

(सत्ता को नकारना ज्ञानप्राप्त हृदय का चमत्कार है। नकार के समुद्र में ही ईश्वर का मोती छुपा है।)

इक़बाल और भारतीय विचारक

इक़बाल भारतीय साहित्य में एक अपूर्व व्यक्तित्व हैं। वे न केवल एक कवि अपितु एक महान् विचारक भी हैं। एक विचारक के रूप में उन्होंने पश्चिमी दार्शनिकों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने मुस्लिम विचारकों के उपदेशों को भी समाहित किया। इसके साथ-साथ वे भारतीय सन्तों और विचारकों से बहुत अधिक प्रभावित थे। इक़बाल दर्शन के अध्येता भी थे। अतः उन्होंने भारतीय दर्शन का भी गम्भीर अध्ययन किया था। विशिष्ट रूप से जब वे अपने शोध प्रबन्ध 'ईरान में तत्त्वमीमांसा का विकास' पर कार्य कर रहे थे तो उन्हें भारतीय दर्शन की गहराइयों में जाने का अवसर अवश्य मिलता होगा, क्योंकि ईरान की तत्त्वमीमांसा को भारतीय वेदान्त और उपनिषदों के सन्दर्भ के बिना भली प्रकार नहीं समझा जा सकता। अनामारी शिम्मेल ने अपनी पुस्तक *Gabriel's Wing* में कहा है :

"एक दार्शनिक होने के नाते उनका भारतीय दर्शन और भारतीय क्लासिकल साहित्य, विशेषतः उपनिषदों से सम्बद्ध होना अनिवार्य था जिनका वे यदा-कदा हवाला देते हैं। वेदान्त दर्शन पर मैक्समूलर का ग्रन्थ उनके अपने पुस्तकालय में था। यौवन में जब अभी उनकी प्रवृत्ति सर्वेश्वरवाद की ओर थी, उन्होंने 'वेदान्त की अत्यधिक उत्कृष्टता' की प्रशंसा की थी। कोई भी यह अनुमान कर सकता है कि उपनिषदों के सूत्रों की झलक कभी-कभी उनके शेरों में मिलती हैं। आत्मा के प्रत्यय ने एक सीमा तक उनके अहं के प्रत्यय की सरंचना को प्रभावित किया होगा, तथापि यह भी याद रखना होगा कि बाद में उन्होंने सभी प्रकार के अद्वैतवादात्मक दर्शन का विरोध किया।"

उपनिषदों में प्रतिपादित स्वाधीनता तथा आत्मा की अनश्वरता

की अवधारणा ने, जो कि भारतीय चिन्तन परम्परा के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है, इक़वाल के विचारों को वहुत प्रभावित किया।

उनके 'जावेद नामा' में जव रूमी तथा इक़वाल क़ब्रों की घाटी में पहुँचते हैं तो उन्हें सवसे पहले एक क़ब्र पर महात्मा वुद्धका आलेख मिलता है, जिन्हें वे एक पैग़म्वर मानते हैं। इक़वाल के अहं के दर्शन का विकास वौद्ध धर्म[1] तथा उसकी आचार प्रणाली से ही हुआ है :

बगुज़र अज़ ग़ैव कि ईं वहम-ओ-गुमाँ चीज़े नेस्त,
दर जहाँ बूदन-ओ-रस्तन ज़े जहाँ चीज़े हस्त।
राहत-ए-जान तलवी ? राहत-ए जाँ चीज़े नेस्त,
दरग़म-ए-हमनफ़सां अश्क-ए-रवाँ चीज़े हस्त।
हुस्न रुख़सार दमे हस्त व दमे दीगर नेस्त,
हुस्न किरदार व ख़्यालात खुशाँ चीज़े हस्त।

(रहस्य का पीछा न करो कि यह भ्रम और छलना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं, संसार में रह कर भी संसार से अनासक्त रहना ही सव कुछ है। तुम आत्मा की शान्ति चाहते हो ? आत्मा की शान्ति भी कुछ नहीं, अपने साथियों के कष्ट में उनके साथ आँसू वहाना ही सव कुछ है। शारीरिक सौंदर्य कभी है और कभी नहीं परन्तु विचार और कर्म का सौन्दर्य ही सव कुछ है।)

मृत्यु से सम्वन्धित इक़वाल के विचार भी आत्मा के विषय में भारतीय दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। उनका यह विश्वास है कि मनुष्य की आत्मा अनश्वर है। अपनी कविता 'वालिदा मरहूमा की याद में' में वे लिखते हैं :

मौत तजदीद-ए-मज़ाक़-ए-ज़िन्दगी का नाम है,
ख़्वाब के पर्दे में बेदारी का इक पैग़ाम है।

1. 'मुक़ाम–ए–इक़वाल', सैयद इशफ़ाक़ हुसैन।

(जीवन की इच्छा के नवीकरण का ही दूसरा नाम मृत्यु है, निद्रा के आवरण में यह जागरण का सन्देश है।)

इक़बाल के जीवनी-लेखक अब्दुल मजीद सालिक का कथन है कि इक़बाल ने संस्कृत का भी अध्ययन किया था। अतिया फ़ैज़ी ने भी इस कथन की पुष्टि की है। उनकी एक प्रारम्भिक कविता निम्नोद्धृत हिन्दुओं के पवित्र गायत्री मन्त्र से प्रभावित है :

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

(ऐ नूरे अज़ली ! ऐ रखशन्दा आफ़्ताब !
आ हम तेरी इबादत करें !
आ हमको अपने नूर से ख़िरद की रोशनी अता कर ।)

(जो भूमि, आकाश और स्वर्ग में व्याप्त है उस भगवान् सविता के संभजनीय तेज का हम ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे।)

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि जब यह कविता 1902 में पहली बार 'मख़ज़न' में प्रकाशित हुई तो इसके साथ इक़बाल की एक टिप्पणी भी थी। मन्त्र की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए इस टिप्पणी में इस प्रकार उल्लिखित था :

"यह एक वास्तविकता है कि संस्कृत शब्दों की सूक्ष्मताओं का आज की प्रचलित भाषाओं में अनुवाद करना कोई सरल कार्य नहीं है। यहाँ इस तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'सवितुर्' के लिए उर्दू में कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। उर्दू में प्रायः इसका अनुवाद 'आफ़्ताब' किया जाता है, परन्तु वास्तव में इससे यहाँ अभिप्राय आकाश से परे चमकने वाला वह सूर्य है जो कि हमारे इस सांसारिक सूर्य के लिए प्रकाश का स्रोत है। प्राचीन जातियों तथा इस्लाम ने भी ईश्वर

G 1161

के अस्तित्व को 'नूर' कहा है। पवित्र क़ुरान में कहा गया है : 'अल्लाहु नूरु-उल-समवात-ए-वा उलारज़।' गायत्री मन्त्र स्वरों तथा व्यंजनों का सुचारु सम्मिश्रण है जिसमें सूक्ष्म स्वरमाधुर्य और सुरीलापन है। इसका अनुवाद करना असंभव-सा ही है। इन कठिनाइयों के दृष्टिगत इसका अनुवाद 'सूर्यनारायण उपनिषद्' में दी गयी व्याख्या पर आधारित है। मेरे शेर अच्छे हैं तथापि मेरी कविता को गायत्री नहीं कहा जा सकता।"[1]

ऐ आफ़्ताव ! रूह ओ रवान-ए-जहाँ है तू,
शीराज़ावन्द-ए-दफ्तरो कोन ओ मकाँ है तू।
वोह आफ़्ताव जिससे ज़माने में नूर है,
दिल है, ख़िरद है, रूह-ए-रवाँ है, शऊर है।
ऐ आफ़्ताव हमको ज़िया-ए-शऊर दे,
चश्मे ख़िरद को अपनी तजल्ली से नूर दे।
है महफ़िले वजूद का सामाँ तराज़ तू,
यज़दान-ए-साकिनान-ए-नशेब-ओ फराज़ तू।
हर चीज़ की हयात का पर्वर्दगार तू,
ज़ाइदगान-ए-नूर का है ताजदार तू।
ने इब्तिदा तिरी न कोई इन्तिहा तिरी,
आज़ाद-ए-क़ैद अव्वल -ओ-आख़िर ज़िया तिरी।

(ऐ सूर्य ! तू सारे संसार की जीवनदायक आत्मा है और सारे संसार के काम केवल तुम पर निर्भर हैं। वह सूर्य जिससे सारे जगत् में प्रकाश है और जिसके कारण हृदय, बुद्धि, जीवनदायक आत्मा और चेतना का अस्तित्व है। ऐ सूर्य ! हमें सद्बुद्धि का प्रकाश दे और ज्ञानचक्षु को अपने तेज से प्रकाशित कर दे। तू सारी सृष्टि को

---

1. Dr. T. C. Rastogi, 'Iqbal And Religions Other Than Islam'

सम्भालने वाला है। तू छोटे बड़े सभी का ईश्वर है। तू दुनिया की हर चीज़ का पालनहार है और ज्योति से उत्पन्न होने वालों का अधिपति है। तेरा न कोई आरम्भ है न अन्त। तेरा प्रकाश हर प्रकार की सीमाओं से स्वतन्त्र है।)

अपनी कविता के आरम्भिक काल में भी इक़बाल ने एक वेदमंत्र का उर्दू में पद्यानुवाद किया था, जो कि, दुर्भाग्यवश, उनके किसी संग्रह में सम्मिलित नहीं है, परन्तु इक़बाल की जीवनी 'रोज़गार-ए-फ़क़ीर' में मिलता है :

ख़वेशों से हो अन्देशा न ग़ैरों से ख़तर हो,
अहबाब से खटका हो न आदा से हज़र हो।
रौशन मिरे सीने में मोहब्बत का शरर हो,
दिल ख़ौफ़ से आज़ाद हो बेबाक नज़र हो।
पहलू में मिरे दिल हो मैं आशाम-ए-मोहब्बत,
हर शै हो मिरे वास्ते पैग़ाम-ए-मोहब्बत।

(न अपने सगे सम्बन्धियों से कोई भय हो न ग़ैरों से कोई ख़तरा हो। न मित्रों से कोई चिन्ता हो और न शत्रुओं से कोई बाधा हो। मेरा हृदय भय से मुक्त हो, तथा मेरी दृष्टि स्वच्छन्द हो। मेरा हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो, हर वस्तु में मेरे लिए प्रेम का सन्देश हो।)

इक़बाल भगवद्गीता के कर्मयोग से भी प्रभावित थे। गीता में आत्मा को अनश्वर कहा गया है तथा कर्म को इसके फल की चिन्ता न करते हुए जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। इसका मूलभूत उपदेश यह है कि मनुष्य को फल की चिन्ता न करते हुए कर्म करना चाहिए। मनुष्य द्वारा कर्म करते समय इच्छा के त्याग से आत्मा ऊपर उठती है तथा इसका परमात्मा से मिलन होता है। अपनी मसनवी 'असरार-ए-ख़ुदी' की प्रस्तावना में इक़बाल ने गीता की शिक्षा के इस

मूलस्रोत पर प्रकाश डाला है :

"श्री कृष्ण का नाम सदैव बहुत सम्मान और प्रेम के साथ लिया जायेगा क्योंकि इस महान् व्यक्ति ने बड़े रोचक ढंग से अपने देश एवं जाति की दार्शनिक परम्पराओं का विवेचन किया और यह सिद्ध कर दिखाया कि कर्म त्यागने का यह भाव नहीं है कि हम कार्य करना ही छोड़ दें क्योंकि कर्म प्रकृति की माँग है और यह जीवन को सुदृढ़ता प्रदान करता है। वस्तुतः कर्म के त्याग का भाव यह है कि हम अपने कर्म के फल की चिन्ता न करें।"[1]

इक़बाल 'मस्ती-ए-किरदार' के बड़े समर्थक थे और उनका यह सन्देश सर्वविदित है :

अमल से ज़िन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी,
ये ख़ाकी अपनी फ़ितरत में न नूरी है न नारी है ।

(कर्म ही जीवन को स्वर्ग अथवा नरक बनाता है। यह नश्वर मानव अपने आप में न देवता है न दानव।)

इसी प्रकार इक़बाल विश्वामित्र से भी प्रभावित हुए थे जैसाकि मैं आरम्भ में उल्लेख कर चुका हूँ। वे प्रसिद्ध संस्कृत कवि भर्तृहरि के भी बड़े प्रशंसक हैं। किंवदन्ती है कि भर्तृहरि उज्जैन के राजा थे, जो अपने यौवन काल में जीवन के भोग विलास में आसक्त हो गये। बाद में उन्हें विराग हो गया तथा उन्होंने अपने को चिन्तन, काव्य-रचना तथा दर्शनशास्त्र में लगा लिया। मैक्समूलर उन्हें सातवीं शताब्दी ईसवी का बताते हैं, यद्यपि इस विषय में कुछ मतभेद हैं। सम्भवतः उनकी मृत्यु 650 ईसवी में हुई। भर्तृहरि एक महान् दार्शनिक तथा कवि होने के साथ-साथ संस्कृत व्याकरण के भी पंडित थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे परन्तु वेदान्त के अन्य समर्थकों के विपरीत वे सत्य को तर्क

---

1. 'Multi-Disciplinary Approach to Iqbal', Asghar Ali Engineer.

से ढूँढ़ने के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि सत्य को तर्क क आधार पर खोजना अन्धेरे में टटोलने के समान है। उनके अनुसार सत्य की खोज प्रेम के माध्यम से ही सम्भव है। यह विचारधारा इक़वाल के चिन्तन से भी मेल खाती है।

मैक्समूलर के अनुसार भर्तृहरि के काव्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह कर्म को फल से नहीं जोड़ते जो कि भगवद्गीता की मूलभूत शिक्षा है। 'जावेद नामा' में इक़वाल स्वर्ग में भर्तहरि का परिचय रूमी से यह कह कर करवाते हैं :

आँ नवा परदाज़ हिन्दी रा निगर,
शबनम अज़ फ़ैज़-ए-निगाहे ऊ गुहर।

(इस भारतीय कवि को देखें जिसकी दृष्टि पड़ने से ओस कण मोती वन जाता है।)

इक़वाल आगे कहते हैं कि भर्तृहरि जीवन के रहस्यों से पूर्णतः परिचित हैं :

कारगाहे ज़िन्दगी रा महरम अस्त,
ऊ जम अस्त ओ शे'र-ऊ-जाम-ए-जम अस्त।

(वह जीवन के व्यापार से परिचित है, वह जमशेद के समान है और इसके शे'र जाम-ए-जमशेद के समान सारे विश्व को प्रतिविम्वित करते हैं।)

इक़वाल भर्तृहरि का ध्यान भारत के लोगों की ओर आकर्षित करते हैं जो स्वतन्त्रता के लिए गहन संघर्ष कर रहे हैं। इस पर भर्तृहरि एक कविता पढ़ते हैं जो, प्रोफ़ेसर शिम्मेल के विचार में, बोथलिक के संस्करण में क्रमांक 337 की कविता का साहित्यिक अनुवाद है। कविता का

सार यह है कि मनुष्य के जीवन में कर्म ही निर्णायक शक्ति है। इक़बाल के शब्दों में :

सजदा बे ज़ौक-ओ-अमल ख़ुष्क बजाए न रसद,
ज़िन्दगानी हमा किरदार चे ज़ेबा ओ चे ज़िश्त ।

(श्रद्धा और सत्कर्म के अभाव में पूजा निष्फल और निरर्थक है। जीवन समूचा कर्म ही है अच्छा हो या बुरा।)

अन्त में वे कहते हैं :

ईं जहाने कि तू बीनी असर-ए-यज़दाँ नेस्त
चर्ख़ा अज़ तुस्त हम आँ रिश्ता कि बरदूक तू रिश्त ।

(यह विश्व जो तुम देख रहे हो ईश्वर का प्रतिविम्व नहीं है, चर्ख़ा तुम्हारा है और इससे तुमने जो कुछ काता है वह भी तुम्हारा है।)

दूसरे शब्दों में तुम अपने चारों ओर जो कुछ देखते हो वह तुम्हारे अपने कर्मों के फल के सिवा कुछ नहीं है।

इक़वाल भर्तृहरि से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने दूसरे उर्दू संग्रह 'वाल-ए-जिब्रील' में उनका एक श्लोक आदर्श वाक्य के रूप में लिया है :

फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जिगर,
मर्द-ए-नादाँ पर कलाम-ए-नर्म-ओ-नाज़ुक बेअसर।

(फूल की पत्ती से हीरा काटना सम्भव है, परन्तु मूर्ख व्यक्ति को मधुर तथा कोमल शब्दों से प्रभावित करना असम्भव है।)

इन सव वातों से स्पष्ट होता है कि इक़वाल को भारतीय दर्शन, पौराणिक कथाओं तथा धर्म का गहरा ज्ञान था। कहा जाता है कि वे

भारतीय महाकाव्यों के भी बड़े प्रशंसक थे और एक समय वे रामायण का उर्दू में अनुवाद करने का विचार कर रहे थे। महाराजा सर किशन प्रसाद को लिखे पत्रों में से एक में उन्होंने लिखा कि एक विद्वान् मसीही जहाँगीरी ने जहाँगीर के शासन काल में इस महाकाव्य का फ़ारसी में अनुवाद किया था तथा उन्होंने महाराजा से अनुरोध किया कि अपने पुस्तकालय में मसीही के रामायण के अनुवाद की प्रति की खोज करवायें। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक नहीं मिल सकी। इसलिए यह योजना आगे न चल सकी।

अन्य कविताओं में भी जहाँ कहीं अवसर मिला है उन्होंने भारत की प्रशंसा को अभिव्यक्ति दी है। उदाहरणतः जब वे मुसलमानों के सुन्दर भविष्य का स्वप्न देखते हैं तो कहते हैं :

अता मोमिन को फिर दरगाह-ए-हक़ से होने वाला है,
शिकोह-ए-तुर्कमानी, जहन-ए-हिन्दी, नुत्क़-ए-एराबी।

(मुसलमानों को ख़ुदा के दरबार से एक बार फिर तुर्कों की शान, भारतीयों की बुद्धि तथा अरबों की बोलने की शक्ति मिलने वाली है।)

[1]अपनी अहं की अवधारणा जो कि उनके दार्शनिक विचार का केन्द्र बिन्दु है, उसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

दिगर अज़ शंकर-ओ-मंसूर कम गोए,
ख़दा रा हम बराह-ए-ख़्वेशतन जोए।

(शंकराचार्य और मनसूर के विचारों की बातें कम करो और ख़ुदी के साधन से ईश्वर की खोज करो।)

1. 'The Poet of the East', Abdulla Anwar Beg.

इससे स्पष्ट है कि जीवन के अन्तिम दिनों में यद्यपि राष्ट्रवादी दृष्टि-कोण के प्रति उनका मोह टूट चुका था तथापि अपने देश के प्रति उनके प्रेम की भावना अन्त तक उसी प्रकार बनी रही और वे इसकी संस्कृति, इसके अध्यात्म और इसके धर्म को आदर और श्रद्धा से देखते थे।

इक़बाल के जीवन में प्रतिबिम्बित राष्ट्रीय एकता

इक़बाल का व्यक्तिगत जीवन भी राष्ट्रीय एकता का ज्वलन्त उदाहरण है। उनके मित्रों और प्रशंसकों का दायरा बड़ा विस्तृत था। इसमें देश के विभिन्न भागों के और सभी समुदायों तथा धर्मों के लोग सम्मिलित थे। इसके बावजूद कि लाहौर उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर शादी लाल ने उन्हें न्यायपीठ में सम्मिलित करने का विरोध किया और इससे पूर्व इस क्लेशदायक अनुभव के बावजूद कि साम्प्रदायिक तत्त्वों ने षड्यन्त्र के द्वारा उनके बड़े भाई को एक झूठे मुकदमे में फँसाया, हिन्दू और सिख समुदायों के प्रमुख व्यक्तियों के साथ इक़बाल के बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। महाराजा सर किशन प्रसाद के साथ उनके सम्बन्ध सच्ची मित्रता, गहन प्रेम-भावना और अगाध पारस्परिक आदर और सम्मान के प्रतीक थे। उनके पत्रों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। इक़बाल ने तो उनकी एक पुत्री के लिए पंजाब में वर ढूँढ़ने की भी बात कही थी। सर जुगेन्द्र सिंह ने ज़ुलफ़िकार अली ख़ां की कार के बारे में संयोग-वश जो वाक्य कहा था उसे कवितावद्ध करके इक़बाल ने उन्हें अमर कर दिया। मौन रहते हुए निरन्तर कर्म करने का उनका सिद्धान्त इस कविता में अभिव्यक्त हुआ है :

कैसी पते की बात जुगेन्द्र ने कल कही,
मोटर है ज़ुलफ़िकार अली ख़ां का क्या ख़मोश।
मैंने कहा नहीं है ये मोटर पे मुनहसिर,
है जादाए हयात का हर तेज़ पा ख़मोश।

(जुगेन्द्र ने कल बड़े पते की बात कही कि ज़ुलफ़िकार अली ख़ां की मोटर कैसी ख़ामोश है। मैंने उत्तर दिया कि यह मोटर की बात नहीं बल्कि जीवन पथ पर तेज़ चलने वाली हर चीज़ ख़ामोश होती है।)

सरदार उमराव सिंह इक़बाल के एक अन्य घनिष्ठ मित्र थे। 1932 में गोल मेज़ कान्फ़्रेन्स से लौटते हुए इक़बाल पैरिस में उनके पास ठहरे थे। सरदार उमराव सिंह ने मालेरकोटला के सर ज़ुलफ़िकार अली ख़ां द्वारा लिखी पुस्तक *A Voice From the East* का प्राक्कथन लिखा था। यह इक़बाल पर अंग्रेज़ी में लिखी गयी सर्वप्रथम पुस्तक थी। इस पुस्तक में इक़बाल की जितनी कविताएँ सम्मिलित हैं उनका अनुवाद वास्तव में सरदार उमराव सिंह ने किया था। सरदार उमराव सिंह को एक अन्य कारण से भी स्मरण किया जायेगा, वे इस युग की सुप्रसिद्ध कलाकार अमृता शेरगिल के पिता थे। महाराजा रणजीत सिंह की परपोती राजकुमारी वम्वा के साथ भी इक़बाल के घनिष्ठ सम्बन्ध थे।

अंग्रेज़ी के विख्यात उपन्यासकार डा० मुल्कराज आनन्द ने एक छोटी-सी घटना का उल्लेख किया है जिससे इक़बाल के चरित्र के एक अज्ञात पहलू पर प्रकाश पड़ता है। युवा विद्यार्थी मुल्कराज आनन्द, जो कवि बनने की आकांक्षा रखते थे, सन् 1922 में इक़बाल से मिलने गये। उन्होंने इक़बाल से कहा, "मेरी एक मित्र और मेरी भाभी बाहर प्रतीक्षा कर रही हैं।" यह सुन कर इक़बाल स्वयं उठे और उन्हें अन्दर लिवा लाये। इससे प्रोत्साहित होकर मुल्कराज आनन्द ने कहा, "मैं कुछ कविताएँ, Calf-love poems (बाल प्रेम कविताएँ), लाया हूँ।" यह कह कर उन्होंने अपनी मित्र यास्मीन की ओर देखा। इक़बाल ने कहा, "यदि बालिका (Calf) यह सुन्दर लड़की है तो मैं तुम दोनों

को आशीर्वाद देता हूँ।" मुल्कराज आनन्द ने कहा, "मैं एक हिन्दू परिवार में पैदा हुआ हूँ और यह लड़की मुसलमान है।" इस पर कवि ने कहा, "इसी प्रकार का मिलन तो मैं चाहता हूँ।" जब यास्मीन एक रेलवे गार्ड की तीसरी पत्नी के रूप में व्याह दी गयी (जिसने अन्ततः उसकी हत्या कर दी) तो इक़बाल ने मुल्कराज आनन्द द्वारा दर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिए लन्दन जाने के मार्ग-व्यय को अंशतः वहन किया। इस घटना से पता चलता है कि इक़बाल कितने स्नेहशील थे और सभी के साथ जाति, नस्ल या धर्म के भेदभाव से अछूते उनके सम्बन्ध कितने सद्भावपूर्ण थे। मैं इस प्रकार की दो और घटनाओं का वर्णन करना चाहूँगा। एक घटना का उल्लेख अब्दुल रशीद तारिक़ ने किया है।[1] इक़बाल के आवास के निकट एक सिनेमाघर था। एक बार तारिक़ ने इस सिनेमा घर के शोर की ओर इक़बाल का ध्यान आकर्षित करते हुए पूछा कि क्या उनके चिन्तन तथा काव्य रचना के क्षणों में इससे बाधा नहीं पड़ती। इस पर इक़बाल ने उत्तर दिया कि वे इसके अभ्यस्त हो गये हैं। जब तारिक़ ने अन्य कोठी किराये पर लेने का परामर्श दिया तो इक़बाल ने उन्हें यह कह कर टाल दिया, "वास्तविकता यह है कि इस कोठी के मालिक दो अनाथ हिन्दू बच्चे हैं। इन्हें मैं 120 रुपये मासिक किराया देता हूँ। यदि मैं यह कोठी छोड़ दूँगा तो मुझे आशंका है कि इन अनाथ बच्चों को इतना किराया न मिल सकेगा।" दूसरी घटना का उल्लेख जलालुद्दीन अकबर[2] ने किया है। पंजाब विश्वविद्यालय की एम०ए० (फ़ारसी) की परीक्षा में प्रथम रहने वाले विद्यार्थी को उच्च अध्ययन के लिए इंग्लैंड भेजने के लिए राज्य छात्रवृत्ति दी जाती थी। सन् 1929 में इक़बाल एम० ए०

1. महमूद निज़ामी द्वारा संकलित 'मलफ़ूज़ात' में सम्मिलित अब्दुल रशीद तारिक़ द्वारा लिखित 'मये शबाना' (पृ० 208)।

2. 'नक़ूश' पत्रिका के सितम्बर, 1977 के नम्बर 121 'इक़बाल विशेषांक' में प्रकाशित मोहम्मद हनीफ़ शाहिद का 'इक़बाल बहैसियत मुमतहिन' शीर्षक लेख (पृ० 455-456)।

फ़ारसी परीक्षा के मुख्य परीक्षक तथा पेपर-सेटर थे। अकबर इस परीक्षा में बैठे परन्तु उनके पर्चे अच्छे नहीं हुए। इसलिए वे हाफ़िज़ महमूद शेरानी तथा सर अब्दुल क़ादिर के साथ इक़बाल की सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि यदि अकबर परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए तो यह राज्य छात्रवृत्ति किसी हिन्दू विद्यार्थी को मिल जायेगी। इक़बाल ने उत्तर दिया, "मैं जानता था कि यह परीक्षार्थी न केवल फ़ारसी में प्रवीण है, अपितु एक अच्छा कवि तथा होनहार विद्यार्थी भी है···· परन्तु छात्रवृत्ति उसे मिलनी चाहिए जो इसका हक़दार है।" परिणामस्वरूप छात्रवृत्ति एक हिन्दू विद्यार्थी को दी गयी जिसने अकबर से दो अंक अधिक प्राप्त किये थे। यह विद्यार्थी फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान और लेखक डा० हीरा लाल चोपड़ा थे जो बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय में फ़ारसी विभाग के अध्यक्ष भी रहे। डा० चोपड़ा ने स्वयं यह घटना मुझे सुनायी। इन घटनाओं से पता चलता है कि इक़बाल व्यापक दूरदृष्टि, निष्पक्ष दृष्टिकोण और भ्रातृत्व तथा मानवता की सच्ची भावना रखते थे। विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों से उनके घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण उन्हें समझने में लोगों को कई बार भ्रान्ति हो जाती थी। वे स्वयं कहते हैं :

ज़ाहिद-ए-तंग नज़र ने मुझे काफ़िर जाना,
और काफ़िर ये समझता है, मुसलमां हूँ मैं।

(संकीर्ण-बुद्धि मुल्ला मुझे काफ़िर मानता है, तो काफ़िर मुझे मुसलमान समझता है।)

अपनी एक अनुपम आत्म-विश्लेषणपरक कविता 'ज़ुहुद और रिन्दी' में इक़बाल अपने पड़ौसी एक मौलवी के मुँह अपने सम्बन्ध में ऐसी ही भावनाएँ व्यक्त कराते हैं :

सुनता हूँ कि काफ़िर नहीं हिन्दू को समझता,
है ऐसा अक़ीदा असर-ए-फ़ल्सफ़ा दानी।

(मैंने सुना है कि वे हिन्दू को काफ़िर नहीं समझते। उनका यह

विश्वास दर्शन-शास्त्र के उनके अध्ययन का परिणाम है।)

यहाँ मैं यह भी कहना चाहूँगा कि इक़बाल को अपने ब्राह्मण पूर्वजों पर गर्व था। उन्होंने पर्याप्त खोज करके यह पता लगाया कि वे सप्रू गोत्र से सम्बन्धित हैं।

उनके पुत्र जावेद इक़बाल ने अपने पिता की जीवनी 'ज़िन्दा रूद' में इस विषय की विस्तार से व्याख्या करते हुए लिखा है कि एक विचार-धारा के अनुसार सप्रू ब्राह्मण मूलतः मिस्र से आये थे। उनकी पुस्तक का सम्बन्धित अंश पर्याप्त रोचक है इसलिए मैं इसे यहाँ उद्धृत करता हूँ :

"ख़्वाजा हसन निज़ामी ने साहित्यिक पत्रिका 'नयी दुनिया' के मई, 1965 के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में 'इक़बाल दिवस' के अवसर पर नयी दिल्ली में मिस्र के राजदूत के साथ अपनी भेंट का वर्णन किया है। राजदूत ने अपने भाषण में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि काश्मीर के ब्राह्मण मिस्र से आये थे। उनका कहना था कि मिस्र में सूर्य देवता के मन्दिर का मुख्य पुजारी 'हरिहर' कहलाता था। मिस्री भाषा में सूर्य के लिए 'रा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। क़ुरान शरीफ़ में सूरा यूसुफ़ अलिफ़ लाम 'रा' के साथ प्रारम्भ होता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि क़ुरान शरीफ़ में भी अल्लाह द्वारा 'रा' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार हिन्दू धर्म में राम का बहुत सम्मान किया जाता है। मिस्र के राजदूत ने आगे यह कहा कि मुख्य पुजारी हरिहर ने क़बली फरऊन की बेटी से विवाह किया। जब फरऊन की मृत्यु हुई तो उसके कोई पुत्र न होने के कारण हरिहर को राजसिंहासन पर बिठाया गया। उसके वंशजों ने 400 वर्ष तक मिस्र पर शासन किया। तत्पश्चात् एक क्रान्ति के परिणामस्वरूप एक अन्य वंश ने सत्ता हथिया ली। हरिहर के वंशज हज़रत मूसा तथा उनके यहूदी अनुयायियों के साथ मिस्र छोड़ कर चले गये। मूसा अपने अनुयायियों के साथ

फ़लस्तीन चले गये और हरिहर के वंशज अफ़ग़ानिस्तान चले गये। यहाँ उन्होंने 'हरि' नामक एक नगर बसाया जो बाद में 'हेरात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय के पश्चात् ये लोग काश्मीर चले गये। अन्ततः ये लोग भारत के मैदानी भागों में उतर आये जहाँ उन्होंने अपने पूर्वज के नाम पर 'हरिद्वार' नामक तीर्थ स्थल की स्थापना की। इस खोज के अनुसार इस उप-महाद्वीप के सभी काश्मीरी ब्राह्मण मिस्री नस्ल के हैं। क्योंकि इक़बाल काश्मीरी ब्राह्मण थे इसलिए वे मिस्री मूल के थे और इसी प्रकार पं० जवाहर लाल नेहरू भी।"

इस नये सिद्धान्त की पुष्टि के लिए किसी अन्य समान साक्ष्य के अभाव में इस पर कोई टिप्पणी करना संभव नहीं है। तथापि यह तो निश्चित ही है कि इक़बाल और उनके पुत्र दोनों को अपने काश्मीरी ब्राह्मण पूर्वजों पर गर्व है। इस संदर्भ में उनके निम्नलिखित शे'र प्रसिद्ध हैं :

मिरा बिंगर कि दर हिन्दोस्तान दीगर नमी बीनी
बरहमन ज़ादाए रम्ज़ आशनाए रूम ओ तबरीज़ अस्त।

मीर ओ मिर्ज़ा ब सियासत दिल ओ दीं बाख़्ता अन्द
जुज़ बरहमन पिसर-ए-महरम-ए-असरार कुजास्त।

(अर्थात् मुझे देखो, क्योंकि भारत में कोई दूसरा ऐसा नहीं मिलेगा जो ब्राह्मण पुत्र हो कर रूम और तबरीज़ के रहस्यों से परिचित हो। मीर व मिर्ज़ा तो राजनीति में अपना धर्म तथा हृदय गँवा बैठे। अब एक ब्राह्मण पुत्र के सिवाय इन रहस्यों को जानने वाला कहाँ है!)

इक़बाल और भारत की स्वाधीनता

इक़बाल ने अपनी कविताओं तथा अन्य रचनाओं में भारत के इंग्लैंड के अधीन होने पर निरन्तर तीव्र मानसिक वेदना प्रकट की है। उनकी प्रारम्भिक कविता 'परिन्दे की फ़रियाद' भी भारत की पराधीनता का

प्रतीकात्मक वर्णन है। उनकी आत्मा तक इस बात पर विद्रोह करती है कि इस राजनीतिक पराधीनता के फलस्वरूप भारत के लोग पश्चिमी रहन-सहन तथा चिन्तन के भी पूरी तरह ग़ुलाम हो गये हैं। अनेक सुन्दर पद्यों में इस विषय में उनकी आन्तरिक भावनाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं :

बन्दगी में घुट के रह जाती है इक जूए कम आब,
और आज़ादी में बहर-ए-बेकराँ है ज़िन्दगी।

(वही जीवन जो स्वाधीनता में उच्छृङ्खल समुद्र के समान होता है, पराधीनता के बन्धन में बँध कर एक तुच्छ जलधारा के समान संकुचित हो जाता है।)

पानी पानी कर गयी मुझ को क़लन्दर की ये बात,
जब झुका तू ग़ैर के आगे न तन तेरा न मन।

(कलन्दर की यह बात मुझे पानी-पानी कर गयी कि जब तुम किसी के आगे झुकते हो तो न तन तुम्हारा अपना रहता है और न मन।)

था जो नाख़ूब बतद्रीज वही ख़ूब हुआ,
कि ग़ुलामी में बदल जाता है क़ौमों का ज़मीर।

(जो उत्तम था वही क्रमशः अनुत्तम बन गया, क्योंकि पराधीनता में राष्ट्रों का विवेक बदल जाता है।)

भरोसा कर नहीं सकते ग़ुलामों की बसीरत पर,
कि दुनिया में फ़क़त मर्दाने हुर की आँख बीना है।

(पराधीन लोगों की दूरदर्शिता पर भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि पूर्वबोध का गुण केवल स्वाधीन लोगों को ही प्राप्त है।)

आल इंडिया मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इलाहाबाद में 29 दिसम्बर, 1930 को अपने प्रसिद्ध अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा :

"हिन्दुस्तान की राजनीतिक पराधीनता समूचे एशिया के लिए असीम वेदना का कारण बनी रही है और बनी हुई है। इसने पूर्व की आत्मा को कुचल कर रख दिया है और उस आत्माभिव्यक्ति के आनन्द से वंचित कर दिया है जिसके द्वारा इस देश ने कभी एक महान् एवं गौरवमयी संस्कृति का निर्माण किया था। जिस हिन्दुस्तान में जीने और मरने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है उस हिन्दुस्तान के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है।"

उन्होंने कुछ वैसा अनुभव किया जैसाकि सॉल बैलो की कहानी का एक चरित्र कहता है, "I was never my own, I was only loaned to myself." (मैं कभी अपना नहीं था, मैं तो स्वयं को केवल ऋण के रूप में दिया गया था।) अतः इक़बाल ने इस स्थिति से बौद्धिक स्तर पर निपटने के लिए दो मार्ग सुझाये। एक मार्ग यह था कि पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी विचारधारा, पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी परम्पराओं की कड़े से कड़े शब्दों में आलोचना और भर्त्सना की जाये। समयाभाव के कारण मैं इस बात की अधिक विस्तार से चर्चा नहीं करूँगा। इस बात की व्याख्या के लिए उनका एक शे'र पर्याप्त है :

गरचे मक्तब का जवाँ जिन्दा नजर आता है,
मुर्दा है, माँग के लाया है फ़िरंगी से नफ़स।

(यद्यपि कालेज का युवा विद्यार्थी जीवित दिखायी देता है, परन्तु

वास्तव में वह बेजान है क्योंकि उसने अपना अन्तिम श्वास अंग्रेज़ से उधार लिया है।)

जो लोग इक़बाल के कवित्व से परिचित हैं, वे उसे भली प्रकार जानते हैं जो इक़बाल ने अपने साहित्यिक जीवन के सभी चरणों में अपनी अनेक कविताओं में पश्चिमी संस्कृति और विचारधारा के बारे में कहा है। भारत में इंग्लैंड के प्रभुत्व के विरुद्ध उन्होंने जाने-अनजाने में जो दूसरा ढंग अपनाया वह था उनका 'ख़ुदी' अथवा 'अहम्' का दृष्टिकोण। उन्होंने अपने देशवासियों को प्रेरित किया कि वे वैयक्तिक और सामूहिक रूप से ऐसा प्रयत्न करें जिससे अपनी क्षमता के अनुरूप अधिकाधिक उपलब्धि हो सके। प्रसिद्ध विद्वानों तथा आलोचकों ने और इक़बाल के गम्भीर अध्येताओं ने उनके 'ख़ुदी' के दृष्टिकोण की विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। परन्तु मेरा विनम्र मत है कि इक़बाल का 'ख़ुदी' का दृष्टिकोण उन नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम था जिनमें इक़बाल का जन्म और पालन-पोषण हुआ। एक पराधीन राष्ट्र के लिए आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता और आत्म-विकास के सन्देश से भिन्न कोई सन्देश नहीं हो सकता। इसी प्रकार, इस राष्ट्र के लोगों के लिए भी स्वाग्रह, स्वाभिमान और आत्म-विकास के सन्देश से अच्छा कोई सन्देश नहीं हो सकता था। उनके 'ख़ुदी' के दृष्टिकोण को मैं अपने देश की राजनीतिक पराधीनता के प्रति एक अति संवेदनशील कवि की प्रतिक्रिया समझता हूँ।

एक अन्य सन्दर्भ में इक़बाल ने कहा है, "जो किसी प्रतिकूल परिवेश को बदलना चाहता है उसे अपने आप में पूर्ण परिवर्तन लाना होगा। ...अपने आन्तरिक जीवन की स्वाधीनता पर दृढ़ विश्वास के अभाव में कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता.... यदि आप अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति देखना चाहते हैं तो अपने सम्पूर्ण अहम् को केवल अपने

ऊपर केन्द्रित करो और अपने को पूर्ण मनुष्य बनाओ।... जीवन-ज्योति औरों से उधार नहीं ली जा सकती । इसे अपने मन-मन्दिर में प्रज्वलित करना आवश्यक है।" अपनी रचनाओं में इस विषय पर उन्होंने बहुत कुछ कहा है :

ख़ुदी की मौत से हिन्दी शिकस्ता बालों पर,
क़फ़स हुआ है हलाल और आशयाना हराम।

सुना है मैंने, गुलामी से उम्मतों की नजात,
ख़ुदी की परवरिश ओ लज्जत-ए-नमूद है ।

(ख़ुदी (अहम्) की मृत्यु के कारण टूटे हुए पंखों वाले भारतीयों के लिए पिंजरा तो वैध है, परन्तु बसेरा निषिद्ध है। मैंने सुना है कि राष्ट्र की (पराधीनता से) मुक्ति ख़ुदी (अहम्) के विकास तथा इसकी अभिव्यक्ति से ही संभव है।)

इक़बाल ने 1937 की गर्मियों में नज़ीर नियाज़ी को नीत्शे के विषय में एक टिप्पणी लिखवायी। इसमें उन्होंने 'ख़ुदी' (अहम्) की व्याख्या इस प्रकार की है : "Ethically the word 'Khudi' means (as used by me) self-reliance, self-respect, self-confidence, self-preservation, even self-assertion when such a thing is necessary in the interest of life and the power to stick to the cause of truth, justice, duty, etc., even in the face of death." (नैतिक स्तर पर 'ख़ुदी' (अहम्) का (जिस अर्थ में मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है) अभिप्राय है कि आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य में जीवन के हित में आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, आत्मसुरक्षा और स्वाग्रह तक की भावना हो, और मृत्यु के सामने भी सत्य, न्याय तथा कर्तव्यनिष्ठा आदि पर अड़े रहने की शक्ति।)

यह सन्देश है जो उन्होंने अपने देशवासियों को दिया। आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि देश पर अपमानजनक साम्राज्यवादी प्रभुत्व के होते हुए यह सन्देश उस समय कितना प्रासंगिक था। राजनीतिक धरातल पर गांधी जी का सत्याग्रह इक़बाल द्वारा परिभाषित 'अहम्' (ख़ुदी) की ही अभिव्यक्ति था। बौद्धिक धरातल पर इक़बाल द्वारा ख़ुदी पर बल देना भी साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध एक प्रकार का सत्याग्रह ही था।

यह एक ऐसा विषय है जिस पर सविस्तर विचार की अपेक्षा है परन्तु मैं इसे किसी अन्य अवसर पर उठाऊँगा। यहाँ मेरा अभिप्राय यह है कि आज भी हमारे देशवासियों के लिए वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से आत्मनिर्भरता और आत्म-विकास की आवश्यकता उतनी ही अधिक है जितनी इक़बाल के समय में थी। यह भी एक उपकरण है जिसका राष्ट्रीय एकता के वर्तमान आन्दोलन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होगा।

उनके 'ख़ुदी' के दृष्टिकोण में नये मनुष्य के प्रादुर्भाव में अटूट विश्वास निहित है। उनका मनुष्य की नियति में दृढ़ विश्वास था। उनका कहना है :

आदमीयत अहतराम-ए-आदमी,
बाख़बर शू अज़ मक़ाम-ए-आदमी।

(मनुष्य के सम्मान में ही मानवता निहित है, मनुष्य की स्थिति को जानिए।)

उरूज-ए-आदम-ए-ख़ाकी से अंजुम सहमे जाते हैं,
कि यह टूटा हुआ तारा मह-ए-कामल न बन जाये।

(सितारे मनुष्य के उत्थान से भयभीत हैं कि यह टूटा हुआ तारा कहीं पूरा चाँद न बन जाये।)

उनकी मृत्यु से कुछ मास पूर्व पहली जनवरी, 1938 को आल इंडिया रेडियो, लाहौर से प्रसारित उनके नववर्ष के सन्दश से कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा :

"आधुनिक युग को अपनी ज्ञान की प्रगति और अपने अभूतपूर्व वैज्ञानिक विकास पर गर्व है। निस्सन्देह यह गर्व उचित है। आज अन्तरिक्ष और काल की दूरी मिटती जा रही है। मनुष्य प्रकृति के रहस्यों को उद्‌घाटित करने और उसकी शक्तियों का अपनी आवश्यकता के अनुसार उपयोग करने के क्षेत्र में आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कर रहा है।... परन्तु इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिये कि केवल मानव जाति का सम्मान करके ही मानव इस धरती पर अपने अस्तित्व को वनाये रख सकता है। जव तक समूचे विश्व की शैक्षिक शक्तियों को मानव के मन में मानव जाति के प्रति सम्मान की भावना जागृत करने की ओर प्रेरित नहीं किया जाता, तव तक यह विश्व हिंसक दरिन्दों का युद्ध स्थल वना रहेगा। ...आइये नया वर्ष हम इस प्रार्थना के साथ आरम्भ करें कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर शक्तिशाली और सत्ताधारी लोगों में मनुष्यता का संचार करे और उन्हें मानव जाति का सम्मान करने की वुद्धि दे।"

संक्षेप में, इक़वाल ने निरन्तर कर्म, अथक संघर्ष, वर्तमान परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन, व्यक्ति के आत्म-विकास और समाज के पुनरुत्थान तथा सृजन की प्रक्रिया में मनुष्य के ईश्वर के साथ भागीदार होने की अपनी नवीन अवधारणा का जो सन्देश दिया उसका उद्देश्य दलित, दमित और पीड़ित भारतीय राष्ट्र में एक नयी चेतना और नये जीवन का संचार था। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गांधी के गतिशील नेतृत्व में तीव्र हुए स्वाधीनता संग्राम ने देश को दीर्घ निद्रा से झकझोर दिया था। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में इक़वाल के कर्म, आत्म-सम्मान और आत्म-विकास अथवा 'ख़ुदी' के सन्देश को एक नया ही महत्त्व तथा आयाम

मिलता है। आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता और आत्म-विकास की भावना को पुनः जागृत करने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है। इस आवश्यकता की पूर्ति तभी संभव है यदि हमारे देश के सभी वर्गों के लोग परस्पर एकता बनाये रखें और जाति, वर्ग अथवा धर्म के प्रति संकीर्ण निष्ठाओं से ऊपर उठ कर सामूहिक रूप से देश-निर्माण का कार्य करें।

इक़बाल और पाकिस्तान

इस प्रसंग में यदि मैं इस विवाद का उल्लेख नहीं करता कि इक़बाल पाकिस्तान के संस्थापकों में से एक थे, तो यह इक़बाल के साथ अन्याय होगा। हाल ही में इक़बाल के कुछ पत्र मिले हैं जिनसे पता चलता है कि वह भारतीय संघ में एक ऐसा स्वायत्तशासी प्रदेश चाहते थे जिसमें पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध और बलोचिस्तान सम्मिलित होते। 29 दिसम्बर, 1930 को इलाहाबाद में आल इंडिया मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने यही बात कही थी। इसी बीच एडवर्ड थाम्पसन ने 'इस्लाम में धार्मिक चिन्तन का पुनर्निर्माण' विषय पर इक़बाल के भाषणों पर लन्दन से प्रकाशित 'आब्ज़र्वर' में टिप्पणी करते हुए उनकी योजना को ग़लती से पाकिस्तान का रूप समझ लिया। इस पर इक़बाल ने थाम्पसन को लिखा, "आपने मुझे 'पाकिस्तान' नामक योजना का समर्थक कहा है। किन्तु 'पाकिस्तान' मेरी योजना नहीं है। अपने भाषण में मैंने जो सुझाव दिया था वह यह है कि एक मुस्लिम प्रान्त का गठन किया जाये, अर्थात् भारत के उत्तर-पश्चिम में मुस्लिम बहुसंख्यक आबादी वाले प्रान्त का। यह (नया) प्रान्त, मेरी योजना के अनुसार प्रस्तावित भारतीय संघ का एक भाग होगा। पाकिस्तान की योजना मुस्लिम प्रान्तों के एक पृथक् संघ का प्रस्ताव करती है, जो एक अलग डोमिनियन के रूप में सीधे इंग्लैंड से सम्बद्ध होगा। इस योजना का जन्म कैम्ब्रिज में हुआ था। इस योजना क प्रवर्तक यह

समझते हैं कि गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में मुसलमानों की ओर से भाग लेने वाल हम लोगों ने मुस्लिम राष्ट्र को हिन्दुत्व की वेदी अथवा तथाकथित भारतीय राष्ट्रवाद पर वलि चढ़ा दिया ।"

स्पष्टतः इक़वाल ने यहाँ चौ० रहमत अली की ओर संकेत किया है, जिन्होंने सन् 1935 में 'पाकिस्तान : दी फादरलैंड आफ पाक नेशन नामक पुस्तक लिखी थी। वास्तव में यह एक स्वप्निल अतिरञ्जित राजनीतिक परिकल्पना मात्र थी। इसमें पाकिस्तान, बंगिस्तान, उस्मानिस्तान, सिद्दीक़िस्तान, फ़ारोकोस्तान, हैदरिस्तान, मपलस्तान, सफ़ीस्तान तथा नसरिस्तान की स्थापना की परिकल्पना की गयी थी। उन्होंने तो भारत के निकटवर्ती कुछ समुद्रों और द्वीपों के भी नये नाम रख दिये थे : जैसे उस्मानिया समुद्र, सफ़िया समुद्र, मोपला समुद्र, आलम द्वीप, अमीन द्वीप इत्यादि। उस समय तो मुहम्मद अली जिन्ना ने भी चौधरी रहमत अली की पाकिस्तान की योजना की कड़ी आलोचना की थी और इसे 'वाल्ट डिस्ने के ड्रीमलैंड' और 'वेल्शियन नाइटमेयर' (Wellsion Nightmare) की संज्ञा दी थी ।

इक़वाल ने अपने 6 मार्च, 1934 के पत्र में राग़िब अहसन को लिखा :

"मैं अपनी पुस्तक की एडवर्ड थाम्पसन (इंग्लैंड के साहित्य जगत् में प्रसिद्ध नाम) द्वारा की गयी समीक्षा की दो प्रतियाँ संलग्न कर रहा हूँ। यह अनेक प्रकार से रोचक है और सम्भवतः आप इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित करना चाहेंगे। कृपया दूसरी प्रति 'स्टार आफ इंडिया' (कलकत्ता) को भेज दें ।

"कृपया इस ओर भी ध्यान दें कि इस समीक्षा का लेखक मेरी योजना को 'पाकिस्तान' की योजना समझ रहा है। मेरा प्रस्ताव यह है कि

भारतीय संघ में एक मुस्लिम प्रान्त का गठन किया जाये; 'पाकिस्तान' की योजना के अन्तर्गत भारतीय संघ से बाहर उत्तर पश्चिमी भारत में मुस्लिम प्रान्तों का एक अलग संघ गठित करने का प्रस्ताव है जो सीधे इंग्लैंड से सम्बद्ध हो ।

"अपनी प्रस्तावना में आप इस बात को स्पष्ट करना न भूलें तथा 'स्टार आफ इंडिया' के सम्पादक का ध्यान भी इस ओर आकर्षित कर दें ।"

राशिद अहसन उन दिनों एक जाने-माने व्यक्ति थे । वह आल इंडिया मुस्लिम यूथ लीग, कलकत्ता मुस्लिम लीग और आल इंडिया जमात-ए-उल्मा-ए-इस्लाम के संस्थापक थे । यह पत्र हाल ही में उपलब्ध हुआ है और पाकिस्तान में प्रकाशित 'इक़बाल–जहान-ए-दीगर' पुस्तक में सम्मिलित किया गया है ।

यहाँ यह जानना भी रोचक होगा कि इस आम धारणा का कि इक़बाल पाकिस्तान की योजना के समर्थक थे पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी खण्डन किया है। ऐसा उन्होंने अपनी पुस्तक *Discovery of India* में इस कथन द्वारा किया है :[1]

"इक़बाल पाकिस्तान के प्रारम्भिक समर्थकों में से थे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इसमें निहित संकट तथा विसंगति को समझ लिया था । एडवर्ड थाम्पसन ने लिखा है कि एक वार्तालाप में इक़बाल ने उन्हें बताया कि मुस्लिम लीग के अधिवेशन के अध्यक्ष की हैसियत में उन्होंने पाकिस्तान का समर्थन किया था, परन्तु वे अनुभव करते थे कि यह समूचे भारत के लिए साधारणतः तथा मुसलमानों के लिए विशेषतः हानिकारक होगा । सम्भवतः उन्होंने अपना मत बदल लिया था, अथवा

1. चतुर्थ संस्करण, लन्दन, 1956 (पृ० 354–55) ।

इस प्रश्न पर पहले उन्होंने गम्भीरता से विचार नहीं किया था, क्योंकि इस प्रश्न ने उस समय तक इतना महत्त्व प्राप्त नहीं किया था। कुल मिला कर जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उत्तरवर्ती काल में पाकिस्तान सम्बन्धी विचारधारा के विकास से अथवा भारत के विभाजन से मेल नहीं खाता। अपनी मृत्यु से कुछ मास पूर्व जब वे बीमार थे तो उन्होंने मुझे बुला भेजा। मैं सहर्ष उनके पास गया। मैंने उनके साथ अनेक विषयों पर वार्तालाप के दौरान अनुभव किया कि मतभेदों के बावजूद हमारे विचारों में कितना साम्य था और उनके साथ निभा सकना कितना सुगम होता। वे पूर्व-स्मृतियों से परिपूर्ण मूड में थे तथा एक विषय से दूसरे पर भटक जाते थे। मैं उन्हें सुनता रहा और स्वयं बहुत कम बात की। मैंने उनकी तथा उनकी काव्य-रचनाओं की प्रशंसा की और यह जानकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वे मुझे पसंद करते हैं तथा मेरे बारे में अच्छी राय रखते हैं। मेरे चलने से पहले उन्होंने कहा, आपमें और जिन्ना में क्या समानता है ? वे राजनीतिज्ञ हैं और आप देशभक्त हैं।"

आल अहमद सरूर के अनुसार इक़बाल ने पाकिस्तान के संबंध में अपने विचार सन् 1937 में बदल लिये। मुहम्मद अली जिन्ना को लिखे अपने 28 मई, 1937 के पत्र में इक़बाल ने कहा, "मुस्लिम भारत के लिए इन समस्याओं का समाधान सम्भव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देश का पुनर्वितरण करके एक अथवा एक से अधिक मुस्लिम बहुसंख्यक राज्य बनाये जायें।" बाद में 21 जून, 1937 को जिन्ना को लिखे अपने पत्र में वे एक पग और आगे बढ़ कर कहते हैं, "मेरे उपर्युक्त सुझाव के अनुसार पुनर्गठित मुस्लिम प्रान्तों का संघ एक मात्र साधन है जिसके द्वारा हम भारत को शान्तिपूर्ण रख सकते हैं तथा मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिमों के प्रभुत्व से बचा सकते हैं। उत्तर-पश्चिम भारत तथा बंगाल के मुसलमानों को क्यों न ऐसे राष्ट्र माना जाये जिन्हें भारत के अन्दर तथा बाहर के अन्य राष्ट्रों के समान आत्म-निर्णय का अधिकार हो ?"

प्रो० सरूर ने इस ओर ध्यान दिया है कि इक़वाल पहली वार इस पत्र में पृथक् संघ का उल्लेख करते हैं जिससे उन्होंने यह अभिप्राय लिया कि सन् 1937 में अपनी मृत्यु से एक वर्ष से भी कम समय पूर्व इक़वाल यद्यपि 'पाकिस्तान' शब्द का प्रयोग नहीं करते, तथापि वे यह सुझाव देते हैं कि दो पृथक् मुस्लिम राज्यों का गठन किया जाये, एक उत्तर-पश्चिम में तथा दूसरा उत्तर-पूर्व में, और यह भी निष्कर्ष निकाला कि सम्भवतः थाम्पसन को उनकी स्मरण-शक्ति ने कुछ धोखा दिया ।

मेरा विचार है कि इक़वाल के पत्रों से प्रो० सरूर ने जो अर्थ निकाला है वह इस विषय पर इक़वाल के विचारों के अनुकूल प्रतीत नहीं होता। हम यह देख चुके हैं कि इक़वाल ने चौधरी रहमत अली की पाकिस्तान की योजना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था । उन्होंने थाम्पसन की इस धारणा का भी खण्डन किया कि वह पाकिस्तान के समर्थक हैं। इस समस्या का मूल इक़वाल द्वारा जिन्ना को लिखे गये 21 जून, 1937 के पत्र में है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि इस पत्र में भी इक़वाल उत्तर-पश्चिमी भारत तथा बंगाल को एक शिथिल भारतीय संघ के अन्दर स्वायत्त-शासी प्रान्त अथवा राज्य के रूप में सोचते हैं, अन्यथा वे "भारत के अन्दर... के अन्य राष्ट्रों के समान" पद का प्रयोग न करते । यदि हम "राष्ट्रों" शब्द से भारत के अन्य राज्यों अथवा प्रान्तों का अर्थ न लें तो यहाँ भारत के अन्दर अन्य राष्ट्रों से और क्या अभिप्राय हो सकता है ? निस्सन्देह इक़वाल के मस्तिष्क में यही वात थी। यहाँ तक कि आल इंडिया मुस्लिम लीग ने भी पाकिस्तान के पृथक् राज्य की स्थापना की माँग का प्रस्ताव सन् 1940 में इक़वाल के देहान्त के दो वर्ष पश्चात् ही विधिवत् पारित किया था । जिस रूप में पाकिस्तान अस्तित्व में आया इक़वाल उसके समर्थक नहीं थे, उनके इस स्पष्ट विचार के सम्वन्ध में यदि कोई शंका थी तो वह इस चर्चा से समाप्त हो जानी चाहिये ।

उपसंहार

संक्षेप में, राष्ट्रीय एकता के लिए अपने वर्तमान आन्दोलन के सन्दर्भ में हम इक़वाल की काव्य-रचनाओं से क्या शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ? पहली शिक्षा, जिसका वे जीवन पर्यन्त निरन्तर प्रचार करते रहे, यह थी कि हमें अपने देश से गहराई तथा सच्चाई से प्यार करना चाहिये और देश के हितों को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखना चाहिये। हमें अपने देश पर, इसकी अमूल्य धरोहर पर, इसकी वर्तमान प्रगति पर तथा इसके उज्ज्वल भविष्य पर गर्व होना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश तथा अपने देशवासियों को तिरस्कार की नज़र से देखना हमारा राष्ट्रीय स्वभाव बन गया है। किसी भी विवेकशील व्यक्ति का दृष्टिकोण दोषदर्शी तो अवश्य होना चाहिये, परन्तु उसे पर्याप्त मात्रा में न्यायशील भी होना चाहिये, ताकि वह अच्छी बातों की प्रशंसा भी कर सके। स्वस्थ देशप्रेम राष्ट्रीय एकता का आधार है।

दूसरी शिक्षा जो हम इक़बाल से ग्रहण करते हैं, यह है कि क्योंकि हमारे देश में अनेक जातियों के विविध भाषा-भाषी तथा विविध धर्मावलम्बी लोग रहते हैं, इसलिए हमें अपने देश के प्रत्येक धर्म तथा प्रत्येक सम्प्रदाय की आधारभूत शिक्षाओं, महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों तथा मूलभूत तत्त्वों को समझने तथा महत्त्व देने का प्रयास करना चाहिये।

हमें अन्य सम्प्रदायों तथा धर्मों के सन्तों तथा शूरवीरों का आदर सम्मान करना चाहिये तथा उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इक़बाल ने इस्लाम में अपनी अगाध आस्था के बावजूद भारतीय चिन्तन और दर्शन की भावना का अध्ययन किया तथा उसे ग्रहण किया। यह खेद का विषय है कि आज भी एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के मूल सिद्धान्तों से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। धर्म-निरपेक्षता का यह अभिप्राय कदापि

नहीं है कि हम धर्म को पूर्णतः तिलांजलि दे दें। धर्म-निरपेक्षता का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि धर्म का राजसत्ता के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। अतः धर्म-निरपेक्ष राज्य में भी अपने बच्चों को विभिन्न धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों की शिक्षा देना अनुचित नहीं होगा।

भारतीय चिन्तन को इक़बाल की मुख्य देन है उनकी 'ख़ुदी' अथवा अहम् (आत्म-सम्मान तथा आत्म-निर्भरता) की अवधारणा। यह सन्देश आज भी उतना ही संगत है जितना उनके समय में था। व्यापक अर्थों में भी उनके मानववाद से हमारे अन्दर जाति, रंग, सम्प्रदाय तथा धर्म के भेदभाव से ऊपर उठ कर मानव के प्रति सम्मान की चेतना जागृत होनी चाहिये। देश की वर्तमान परिस्थितियों की यह माँग है कि सभी वर्गों तथा प्रदेशों में परस्पर सहनशीलता, सामंजस्य तथा सौहार्द के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न किया जाये।

आज हमारा देश संकट की दशा में से गुज़र रहा है। फूट डालने वाली शक्तियाँ सक्रिय हैं। साम्प्रदायिक दंगे आज भी हो रहे हैं। क्षेत्रीयता का पिशाच देश के विभिन्न भागों में अपना भोंडा सिर उठा रहा है। जातिगत संघर्ष आज भी आम हैं। जनता में भेद-भाव और वैर-विरोध उत्पन्न करने के उद्देश्य से समय-समय पर भाषाई प्रश्न उठाये जा रहे हैं। जाति, धर्म, सम्प्रदाय और प्रादेशिकता के प्रश्नों को लेकर उठ रहे ये सभी विवाद ऐसे अपशकुन हैं जिनके रहते चैन की साँस नहीं ली जा सकती। अतः हमें एक बार फिर इक़बाल के इस अत्यन्त प्रेरणामय एवं आवेशपूर्ण अनुरोध का स्मरण करना चाहिये :

आ ! ग़ैरियत के पर्दे इक बार फिर उठा दें,
बिछड़ों को फिर मिला दें, नक्श-ए-दुई मिटा दें।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती,
आ ! इक नया शिवाला इस देस में बना दें।
शक्ति भी, शान्ति भी, भगतों के गीत में है,
धरती के बासियों की मुक्ति प्रीत में है।

(आओ हम उन परदों को उठा दें जो हमें एक दूसरे से अलग करते हैं। आओ हम उनको मिला दें जो विछुड़ गये हैं। हमारे हृदय की वस्ती दीर्घकाल से वीरान पड़ी है, आओ इस देश में एक नया शिवालय वना दें। शक्ति और शान्ति दोनों भक्तों के गीतों में है, और इस धरती के निवासियों की मुक्ति प्रेम और सद्भावना से ही सम्भव है।)

—o—

BIBLIOGRAPHY

Sr. No.	*Name of book*	*Name of Author*
1.	Thoughts and Reflections of Iqbal	Syed Abdul Vahid
2.	Multi Disciplinary Approach to Iqbal	Publications Division
3.	Gabriel's Wing	A. Schimmel
4.	Iqbal as a Thinker	Eminent Scholars
5.	Studies in Iqbal's Thought and Art	M. Saeed Sheikh
6.	Iqbal Aur Bhopal	Sahba Lucknavi
7.	Iqbal-Ka-Siasi Karnama	Mohammad Ahmed Khan
8.	Glimpses of Iqbal's Mind and Thought	Dr. H.H. Bilgrami
9.	The Poet of the East	Abdulla Anwar Beg
10.	Studies in Iqbal	Syed Abdul Vahid
11.	Iqbal Ki Shaksiat Aur Shairi	Prof. Hamid Ahmed Khan
12.	Iqbal : Nayi Tashkeel	Prof. Aziz Ahmed
13.	Iqbal Aur Insan	S. Ashfaque Husain
14.	Iqbal-Ek Tajziati Mutaala	Saahil Ahmed
15.	Zinda Rood	Dr. Javed Iqbal
16.	Muquam-e-Iqbal	S. Ashfaque Husain
17.	Malfoozat	Mahmood Nizami
18.	Naqoosh—Iqbal Number, 1977	

14805—D.H.S.A.—H.G.P., Chd.

Library IIAS, Shimla
H 819.16 Iq 1 B
00067181